आधुनिक समस्याएँ
प्रमाणिक समाधान

एलाचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशकः
डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला
फिरोजाबाद उ०प्र०

ॐ ह्रीं नमः

प्रथम संस्करण : फरवरी 2014
प्रतियाँ : 3,000

आधुनिक समस्याएँ
प्रमाणिक समाधान

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

मंगलाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशन
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)
मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

"पुरोवाक्"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

जिज्ञासाओं का समुचित समाधान सम्यक्ज्ञान को वृद्धिंगत करने वाली अनुपम प्रेरणा है, जिज्ञासाओं का समुचित समाधान मिलने से जीवन की सही राह और मंजिल भी मिल जाती है, समाधान ही सम्यक्त्वता का कारण है, समाधान ही चेतना का प्राण है, समाधान ही समाधि का सुसमर्थ निमित्त है, समाधान ही स्वर्गीय जीवन शैली का हेतु है, समाधान में ही सुख है, शांति है, आनंद है, अमन है, चैन है, जीवन का सम्पूर्ण सार है।

जिज्ञासाओं का उत्पन्न होना शुभ है, जिज्ञासायें इस बात का प्रतीक हैं कि व्यक्ति सम्यग्ज्ञान के क्षेत्र में गतिशील है, मंजिल के समीप पहुँच रहा है, शंकाओं का निराकरण निःशंकितता प्रदान करने वाला है, जिज्ञासाओं का समाधान न होने पर वह शंका बन जाती है, शंका सम्यक्दर्शन का अतिचार है, जो सम्यक्दर्शन व सम्यक्ज्ञान को मलिन करने वाली है, यदि शंकायें दीर्घकाल तक विद्यमान रहती हैं तो वे शनैः-शनैः संशय या विभ्रम/विपर्यय का अथवा अनध्यवसाय का रूप ले लेती हैं, संशय एक प्रकार का मिथ्यात्व ही है, विपर्यय या विभ्रम तत्त्व के प्रति जब होता है, तब वह मिथ्यात्व ही कहलाता है।

मिथ्यात्व ही भव-भ्रमण का मूल कारण है, मिथ्यात्व ही अनंतानुबंधी कषाय को जीवंतता प्रदान करता है, मिथ्यात्व ही अनंतानुबंधी का प्राण है, संसार का अडिग खूँटा है, मिथ्यात्व ही समस्त कर्मों का राजा है, अनंत दुःखों का मूल बीज है, जिज्ञासा मिथ्या गति कर शंका व संशय तक न पहुँचे इसलिए समाधान करना अत्यंत आवश्यक है।

युवापीढ़ी में घटती प्रभावना का भी यही एक मुख्य कारण है कि जिज्ञासाओं का समुचित समाधान सही समय पर नहीं मिल पाता, कई बार तो बालकों को पालकों की डाँट-फटकार तक खानी पड़ती है। प्रस्तुत आधुनिक

समस्याएँ प्रमाणिक समाधान नामक पुस्तक जो आपके हाथ में है आशा है कि आपको समुचित समाधान प्रदान करके सम्यक् गति प्रदान करेगी।पाठक हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर आद्योपांत स्वाध्याय करें।प्रमादवश हुई त्रुटियों के लिए आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।प्रस्तुत कृति की पाण्डुलिपि,प्रकाशक एवं मुद्रण में सहयोगी सभी संघस्थ त्यागीव्रती,सुधी श्रावकों को यथायोग्य समाधिरस्तु एवं धर्म वृद्धि शुभआशीर्वाद।

अलमति विस्तरेण

ॐ ह्रीं नमः
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
8/9/2013

'समर्पण'

जिन्होंन मेरी चेतनारूपी मृतिका को
मंगलकलश का आकार प्रदान किया है,
जिन्होंने मेरे जीवनरूपी अनगढ़ पाषाण को
तराशकर परमात्मा की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत
किया है ,जिन्होंने अज्ञान के अंधकार को प्रकाश
में बदलने रूप मुझ पर कृपा दृष्टि की है,
जिन्होंने मेरे चित्त के कूप में से अनावश्यक
कूड़ा कचरा निकाल कर सुख-शांति के स्रोतों को
निसृत किया है,जिन्होंने मेरे चित्त के क्षितिज पर
रत्नत्रय के सूर्य को प्रकट करने की भूमिका
निभायी है,जिन्होंने मुझे माँ जैसा वात्सल्य
व पिता जैसा संरक्षण दिया है जो सदैव मेरे
चित्ताम्बुज पर विराजमान रहते हैं उन परम
पूज्य, सिद्धान्त चक्रवर्ती,श्वेतपिच्छाचार्य गुरुदेव
श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज के कर कमलों में
समर्पित,

प्रस्तुत कृति एवं चरण युगल में सिद्ध,श्रुत
आचार्य भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हुए

कृतिकार
एलाचार्य वसुनंदी मुनि

(जिज्ञासा-1)
''मंगलाचरण क्यों?''

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व मंगलाचरण करने के सात कारण हैं:-

प्रथम- पापों का नाश और उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति हेतु।

दूसरा- शिष्टाचार का पालन करने हेतु।

तीसरा- नास्तिकता का परिहार कर आस्तिक्यपने के संस्कारों को सुदृढ़ करने हेतु।

चतुर्थ- कार्य की निर्विघ्न समाप्ति हेतु अर्थात् विघ्नों का नाश करने के लिए।

पंचम- सातिशय पुण्य की प्राप्ति हेतु, इष्ट फल की सम्प्राप्ति हेतु मंगलाचरण अत्यावश्यक है।

षष्टम- जिससे जीवन मंगल आचरण से युक्त बने, मंगलमय आचरण ही मोक्ष का साक्षात् हेतु है।

सप्तम- अपने इष्ट देवता को नमस्कार करने के लिए, जिससे नूतन ऊर्जा, उल्लास, उत्साह को वृद्धिंगत किया जा सके और अचिन्त्य शक्ति पुंज को प्राप्त किया जा सके।

(जिज्ञासा-2)
''गुरु की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- जीवन में गुरु की आवश्यकता के पाँच कारण हैं:-

प्रथम- गुरु के बिना जीवन समीचीन रूप से शुरू नहीं होता, इसलिए अपने जीवन को समीचीन रूप से शुरू करने हेतु।

दूसरा- ''गुरु'' शब्द में निहित ''गु'' अक्षर का अर्थ है अंधकार और ''रु'' अक्षर का अर्थ है नष्ट करने वाला, अपनी आत्मा में विद्यमान अंधकार को नष्ट करने के लिए गुरु परमावश्यक हैं।

तीसरा- ''गुरु'' शब्द का विस्तार करने पर चार वर्ण दृष्टिगोचर होते हैं (१) ग + (२) उ + (३) र + (४) + उ, ये चार वर्ण चार कषायों का शमन कर मानों चारों गतियों का नाश करने वाले हैं, गुरु चरणों में चारों धाम हैं, इन वर्णों का अर्थ है- (१) गरिमामय, (२) उन्नतिकारक, (३) रहस्यमयी, (४) रहस्यों के उद्घाटक, अपने जीवन के रहस्यों के उद्घाटन हेतु गुरु परमावश्यक है।

चतुर्थ- ''गुरु'' शब्द का अर्थ है जो गुणों में भारी हो, जिनके चरण सान्निध्य को प्राप्त करके शिष्य भी गुणों से भारी अर्थात् गुरु और प्रभु बन सके, बिना गुरु के न कोई गुरु बन सकता है और न ही कोई प्रभु बन सकता है, अपनी आत्मा को परमात्मा, महात्मा या अंतरात्मा बनाने के लिए गुरु आवश्यक है।

पंचम- धर्म के क्षेत्र में भव्य जीव का जन्म गुरु के द्वारा ही होता है, वे ही परम संरक्षक होते हैं, उनकी छत्रछाया/चरण सान्निध्य में शिष्य का हित सम्भव है। जिस प्रकार माली पौधों की रक्षा व संवर्द्धन और कुंभकार कलश निर्माण व संरक्षण करता है उसी प्रकार गुरु भी अपने शिष्यों का निर्माण, संवर्द्धन व संरक्षण करते हैं, अतः भव्यों को उनकी परम आवश्यकता है।

(जिज्ञासा-3)
''पूज्य पुरुषों के चरण स्पर्श क्यों?''

समाधानः- शरीर के कुछ अंग वर्गणाओं (ऊर्जा शक्ति) को मात्र ग्रहण/ आहरण करते हैं तो कुछ अंग विशुद्ध या अशुद्ध वर्गणाओं को निस्तरण/निराहरण /विसर्जन करते हैं, कुछ अंग उभय कार्य करते हैं।

अंगुली के अग्रभाग पौर ऊर्जा शक्ति या विशुद्ध वर्गणाओं को ग्रहण करते हैं, पैर के अंगुष्ठ, अंगुली के अग्र पर्व ऊर्जा शक्ति या वर्गणाओं का विसर्जन करते हैं, हाथ की हथेली का मध्य भाग भी ऊर्जा या वर्गणाओं को निष्कासित करता है, ब्रह्म स्थान (सिर के ऊपर का मध्य भाग) भी ऊर्जा शक्ति या विशुद्ध वर्गणाओं का आहरण व निस्तरण दोनों कार्य करते हैं। भव्य जीव अपनी आत्मा का कल्याण करने हेतु पूज्य पुरुषों के चरणों के अग्रभाग का अँगुली के अग्रभाग से स्पर्श करते हैं।

जिससे उनकी विशुद्ध वर्गणायें व ऊर्जाशक्ति वह अँगुली के पौरों से ग्रहण कर सके, चरण ही आचरण के प्रतीक हैं, पूज्य पुरुषों के चरणों का स्पर्श करने से उनके आचरण का भी स्पर्श होता है, चरण ही आचरण के कारण होते हैं।

चरण पूरे शरीर के आधार स्तम्भ हैं, इन पर ही जीवन अवलम्बित है, चरणों के बिना जीवन धराशायी ही हो जाएगा।

चरण ही व्यक्ति को मंजिल तक पहुँचाने में समर्थ होते हैं, अतः अपनी मंजिल को पाने हेतु, मंजिल के कारण स्वरूप चरण-स्पर्श करना चाहिए। भारतीय संस्कृति में आचरण/सदाचार/चारित्र/धर्म क्रियाओं से व्यक्ति की पूज्यता व अपूज्यता का निर्णय किया जाता है और उस आचरण का प्रतिनिधित्व करने वाले चरण ही उसके प्रतीक हैं, इसलिए पूज्य पुरुषों के चरणों को स्पर्श कर उनकी धूली अपने उत्तमांग/मस्तिष्क पर धारण करना चाहिए।

(जिज्ञासा-4)
''नित्य प्रातः देव-दर्शन क्यों?''

समाधानः- जो सर्वज्ञता, वीतरागता, सर्वदर्शित्व, सर्वशक्ति युक्त, हितोपदेशिता आदि दिव्यगुणों से युक्त होते हैं, वही सच्चे देव हैं, वही परमात्मा हैं, वही ईश्वर है, वही जगदीश, वही जगन्नाथ इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं।

देवदर्शन करने से क्रोधादि कषायें शांत हो जाती हैं, पापों से विरक्ति हो जाती है, धर्म के प्रति श्रद्धा सुदृढ़ होती है, आत्मज्ञान या तत्त्वबोध की प्राप्ति होती है, चारित्र में निर्मलता आती है, पापों का क्षय होता है, दुःखों का/कर्मों का नाश होता है, मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम का अंधकार नष्ट हो जाता है, दिव्यानंद की अनुभूति होती है।

निज आत्मा का यथार्थ बोध होता है, निजत्व में जिनत्व प्रकट होते हुए दृष्टिगोचर होता है, प्रतिकूलताओं को सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है, पाप प्रकृतियों का पुण्य प्रकृतियों में संक्रमण हो जाता है।

नित्य-नित्य दर्शन करने से हमारा प्रतिदिन मंगलमय व्यतीत होता है, प्रातःकाल शरीर में प्रसन्नता, हर्ष, आह्लाद, स्फूर्ति आदि गुण संचालित रहते हैं। प्रातः भोजन आदि न लेने से प्रमाद भी शरीर में नहीं रहता।

अतः भव्य जीवों को अपने इष्ट देव/वीतरागी भगवान के दर्शन हमेशा करना चाहिए, प्रातःकाल नित्य करना चाहिए।

(जिज्ञासा-5)
''अष्ट द्रव्य से पूजन क्यों?''

समाधानः- ''किसी महल में प्रवेश करने हेतु आठ द्वार पार करने पड़ते हैं, आठ ताले प्रत्येक द्वार पर अलग-अलग जाति के लगे हों, तो उन्हें खोलने के लिए आठ प्रकार की चाबियाँ चाहिए, एक चाबी से वे सभी ताले नहीं खुल सकते, वे सभी चाबियाँ एक गुच्छे में तो रह सकती हैं, किन्तु सभी चाबियाँ तालों के अनुसार पृथक-पृथक होंगी।

हमारी आत्मा भी ८ प्रकार के कर्मरूपी तालों में बंध है, उन आठ प्रकार के कर्म बंध को नष्ट करने के लिए अष्टविधि द्रव्य से पूजा करना अनादिकाल से प्रवर्तमान है, आठ कर्मों को नष्ट करना है तो आठ द्रव्यों से ही पूजा करना आवश्यक है।

जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल ये अष्ट मांगलिक द्रव्य हैं, अनादिकाल से भव्यजीव द्रव्य कर्मों के विमोचन के लिए इन्हीं अष्ट द्रव्यों से पूजन करते हैं।

हमें अष्टम वसुधा/सिद्धशिला तक कर्म विमुक्त होकर पहुँचना है, अतः आठ द्रव्य ही पूजन के लिए अनादि काल से मान्य किये हैं।

सिद्धों के अथवा प्रत्येक भव्य आत्मा के शुद्ध दशा में आठ मूलगुण ही होते हैं, अतः अपने शाश्वत अष्ट मूलगुणों को प्राप्त करने के लिए भव्यजन इन्हीं द्रव्यों से पूजन करते हैं।

देवगण अणिमा आदि आठ ऋद्धियों के सम्पूर्ण फल की सम्प्राप्ति व स्वात्मा के आठ गुणों की प्राप्ति के लिए अष्ट-द्रव्य से पूजन करते हैं।

अहोरात्रि में आठ पहर होते हैं, उन आठ प्रहरों में अर्जित अशुभ कर्म के विनाश के लिए भी अष्ट-द्रव्य से भव्यजन जिनेन्द्र पूजन करते हैं।

(जिज्ञासा-6)
''पूज्य पुरुषों को नमस्कार क्यों''

समाधानः- पूज्य पुरुषों को प्रणाम करने से कषायों का शमन होता है, परिणामों में निर्मलता वृद्धि को प्राप्त होती है।

पापों से विरक्ति होती है, धर्म के प्रति अनुराग संवर्धित होता है।

नमस्कार करने से तनाव दूर होता है, मनः संताप का परिहार होता है, विनय गुण प्रकट होता है, एक विनय गुण से अनेक गुणों का आकर्षण होता है।

नमस्कार/ प्रणाम करने से शरीर शैथल्यता से विशुद्ध वर्गणाओं का आहरण होता है, अप्रशस्त वर्गणाओं का विसर्जन होता है।

पूज्य पुरुषों को नमस्कार करने से जीवन में पूज्यता अवतरित होती है, हीनता, दीनता व कुसंस्कार, तुच्छ विचारों का चित्त से पलायन हो जाता है।

पूज्य पुरुषों को प्रणाम करने से काम वासना व पंचेन्द्रिय विषय व विकारों का प्रशमन होता है, पाप भावों का नाश होता है।

(जिज्ञासा-7)
''आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग क्यों?''

समाधान- जिसमें परिणाम आर्त/दुःख रूप होते हैं, उस ध्यान को आर्त्तध्यान कहते हैं, और जिसमें रुद्र परिणाम हो, वह रौद्रध्यान कहलाता है।

आर्त्तध्यान से व्यक्ति अंतरंग में दुख से पूरित होता है तथा रौद्रध्यान में कषाय युक्त हो आनंद का अनुभव करता है,

ये दोनों ध्यान (दुर्ध्यान) दुर्गति के ही कारण हैं, दोनों दुर्ध्यानों के चार-चार भेद हैं।

१. इष्ट वियोग २. अनिष्ट संयोग, ३. पीड़ा चिंतन, ४. निदान।

ये आर्त्तध्यान के और

१. हिंसानंदी, २. मृषानंदी, ३. चौर्यानंदी, ४. विषय संरक्षणानंदी।

ये चार रौद्रध्यान के भेद हैं।

भवभ्रमण और दुःख के कारणभूत दुर्ध्यानों का आत्महित के वांछक भव्य-जीवों को करना त्याग परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-8)
''धर्मध्यान करना जरूरी क्यों?''

समाधान- संसार का प्रत्येक प्राणी सुख-शांति चाहता है, वह सुख-शांति शाश्वत स्वभाव की प्राप्ति में/सिद्धत्व की प्राप्ति में है, सिद्धत्व की प्राप्ति कर्म क्षय से ही संभव है, कर्मों का क्षय सम्यक् रत्नत्रय की साधना से होता है, रत्नत्रय की स्थिति-सुखी जीवन के लिए आत्मशांति के लिए परमावश्यक है।

जिस प्रकार मानव शरीर को जीवंतता प्रदान करने के लिए भोजन-पानी, श्वासोच्छ्वास, प्रकाश आदि आवश्यक है, उसी प्रकार सुख व शांति के मार्ग में गतिशील आत्मा की जीवंतता के लिए धर्मध्यान भी परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-9)
''चित्त की स्थिरता क्यों?''

समाधान- चंचलता सदैव विकल्पों को पैदा करती है, चंचलता से आकुलता और आकुलता से चंचलता, वृक्ष व बीज की तरह उत्पन्न होती है, आस्रव बंध का हेतु है, ये कर्मों का आस्रव और कर्मों का बंध ही संसार के मुख्य कारण हैं, ये ही दुख के साक्षात् हेतु हैं।

दूसरी बात यह है कि चंचल चित्त शांति के लिए विषयों की ओर गमन करता है, पापों में, कषायों में सुख-शांति की खोज करता है, चंचल चित्त भ्रमर की तरह पर पदार्थों में वैसे ही लीन हो जाता है, जिस प्रकार पराग का लोभी षट्पद पुष्पों की गंध/मकरंद में लीन हो जाता है, चित्त की चंचलता सदैव दुखदायक ही है।

सुख शांति ठहराव में है दौड़ने में नहीं, चंचल चित्त दौड़ते हुए व्यक्ति की तरह से है, दौड़ता हुआ व्यक्ति भोग या उपभोग का आनंद नहीं ले सकता, आनंदानुभूति ठहराव में है दौड़ने में नहीं।

चंचल जल में अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दिख सकता, उसी प्रकार चंचल चित्त आत्मस्वरूप से साक्षात्कार नहीं कर सकता, आत्मशांति का अनुभव करने के लिए, स्व-स्वरूप को पाने के लिए, स्वकीय शाश्वत व स्वाभाविक सुख का भोग करने के लिए चित्त की स्थिरता परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-10)

''देव, शास्त्र, गुरु की आरती क्यों?''

समाधान- सच्चे देव, शास्त्र, गुरु सदैव और सर्वत्र भव्यजीवों के द्वारा पूजनीय होते हैं, पूज्य पुरुषों की पूजा- अर्चना भव्यों को पूज्य बनाती है, आरती भी पूजा का ही एक अंग है, यह संध्याकालीन विशेष पूजा है।

आरती का आकार भी सिद्धक्षेत्र/सिद्धशिला की तरह है आरती को नीराजन भी कहते हैं, या आरती का आकार नाव और नाविक की तरह है, यह भवसागर से तिरने का प्रतीक है, आरती ज्ञान व ज्योति को निज में प्रज्वलित करने का संकेत है, आरती करने से चित्त प्रसन्न होता है, तनाव टूट जाता है, पाप वर्गणाऐं पुण्य में परिवर्तित होती हैं, चित्त में अह्लाद, परमानंद भर जाता है, दिन भर की थकान व विकल्पों से शांति मिलती है।

अतः अब जीव अपनी शुद्ध दशा पाने हेतु विवेक पूर्ण पूज्य पुरुषों की आरती (आरातिका) वर्तिका से अरतिका-ज्योति पुंज से ज्योति का आह्वान/प्रकटीकरण करते हैं।

जीवघात न हो इस प्रकार विवेक पूर्ण क्रिया स्वरूप भव्य जीवों को आरती करना चाहिए।

(जिज्ञासा-11)

''मौनव्रत का पालन क्यों?''

समाधानः- संसारी प्राणियों के जीवन में अनादिकाल से संसार का संवर्द्धन करने वाले संस्कारों का ही विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, संसार के संस्कार शरीर की चेष्टाओं में, वचनों के प्रयोग में, मानसिक विचारों में भी अनुभावित होते हैं।

बोलने से असत्य वचन, दूसरों को कष्टप्रद वचन, छलकपट या मायाचारी के वचन, अहंकार का पोषण करने वाले वचन, लोभ से प्रेरित होकर बोले गये, दीन-हीन वचन, धर्म के विघातक वचन, परिग्रह को बढ़ाने वाले वचन, राग-द्वेष व मोह को उत्पन्न करने वाले वचन, कषायों को संवर्द्धित करने वाले वचन, इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति करने वाले वचन, गुणोच्छादन और दोषोत्पादक वचन ही अधिकांशतः श्री मुख से निसर्जित होते हैं जिनसे कलह, संक्लेशता, वैमनस्यकता, लड़ाई-झगड़ा भी सम्भव है, आत्मशांति और स्वाभाविक सुख के भोक्ता को अपनी ओर यानि अन्तर्यात्रा करने के इच्छुक को अधिकांश मौनव्रत का ही पालन करना चाहिए।

देखो! मौनव्रत का पालन करने वाली तुंगभद्रा अगले भव से मोक्ष को प्राप्त हुई, मौन सद्ज्ञान की वृद्धि करने वाला, स्मरण शक्ति बढ़ाने वाला, कलह को शांत करने वाला, परम्परा से तीर्थंकर की पदवी व केवलज्ञान को प्राप्त कराने वाला है, अतः मौन का अधिकाधिक प्रयोग करें। शब्दों का दुरुपयोग या अपव्यय न करें। किसी ने कहा भी हैः-

''मौन साधना करना प्यारे, मौन सदा सुखदाई है।
आत्मशांति का अनुभव होगा, दुःख की यही दवाई है।।''

हम बैठे अपनी मौन सों, हम बैठे अपनी मौन सों।
दिन दश के महमान जगतजन, बोली बिगारें कौन-सों।।
हम बैठे अपनी मौन सों...

(जिज्ञासा-12)
''तनाव क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी अपेक्षाओं से युक्त होकर जीता है, जब-जब उसकी अपेक्षाऐं पूर्ण होती हैं, तब-तब उसके जीवन में अहंकार वृद्धिंगत होता है, किन्तु जब उसकी अपेक्षायें टूटती हैं या अपूर्ण रह जाती हैं, तब उसे क्रोध आता है और क्रोध को अंदर दबाने से तनाव होता है अथवा व्यक्ति शक्ति से ज्यादा कार्यों को स्वीकार करता है, तो तनाव होता है।

प्रत्येक व्यक्ति की कार्यक्षमता अलग-अलग और सीमित ही होती है, किन्तु तृष्णा निःसीम होती है, जब मस्तिष्क तंतु अधिभार (अधिक वजन) से युक्त होते हैं तो उनमें खिंचाव होता है यही तनाव कहलाता है।

यदि किसी रस्सी में अनेक छोटी-छोटी रस्सी बाँधकर पृथक-पृथक दिशाओं की ओर खींचा जाये, उसके दोनों सिरे विपरीत दिशागत पोल से बंधे हों, तब उस रस्सी की जो स्थिति होती है वही स्थिति नाना विकल्पों से युक्त तनावग्रस्त पुरुष की होती है।

तनाव के मुख्य कारण हैंः-

१. कार्य क्षमता से ज्यादा कार्य करना।
२. चिंताओं से सदैव घिरे रहना।
३. अपनी गलत धारणाओं को पकड़े रहना।
४. हठाग्रही बने रहना।
५. तत्त्वज्ञान से रहित होकर जीवन जीना।
६. दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा या दृष्टिकोण को नहीं समझना।
७. आत्म संयमी न हो स्वेच्छाचारी, अनर्थकारी प्रवृत्ति करना।

(जिज्ञासा-13)
''जीवन में शिक्षा की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- शिक्षा प्रज्वलित दीपक की तरह से है जो स्व पर स्वरूप का भान कराती है, शिक्षा के बिना मानव पशु के समान कहा जाता है, अक्षर ज्ञान के बिना दूसरे के भावों को (जिन्हें शब्दों की पोशाक पहनाई है उन्हें) पढ़ने में समर्थ नहीं हो सकता। न ही अपने भावों को वर्ण वर्तिका से लिप्यासन पर लिखने में समर्थ हो सकता है।

शिक्षा के बिना उसका जीवन अंधकार में गमन करने वाले व्यक्ति की तरह लक्ष्य विहीन होता है।

शिक्षा जीविका के उपार्जन का भी साधन है तथा आत्म उद्धार का हेतु भी, शिक्षा मानव को (प्राणी को) शिष्ट और क्षांतियुक्त परिणामों वाली बनाती है। शिक्षा ही शिष्ट, शांत, सुखद जीवन की आधार शिला मानी गई है, बिना शिक्षा के जीवन अभिशाप बन जाता है।

शिक्षा ही प्राणियों के जीवन में बहिरंग और अंतरंग के विकास का, उन्नति का, गुणसंवर्द्धन का हेतु है, बिना शिक्षा के गुण संवर्द्धन व सुखद स्थिति की संस्थिति भी असंभव है।

शिक्षा प्राणी का दूसरा जन्म कहा जाता है, प्रथम जन्म माँ के गर्भ से होता है, दूसरा जन्म गुरु के सत्संग/सान्निध्य से। संक्षेप में कहें शिक्षा सुखी, विकासशील, शांतिपूर्ण जीवन का प्राण है, शिक्षा के बिना जीवन मुर्दे की तरह ही है।

(जिज्ञासा-14)
''आगम ग्रंथों का स्वाध्याय क्यों?''

समाधानः- ''स्वस्मै अध्ययन स्वाध्यायः।''

अपनी आत्मा की उन्नति के लिए किया गया अध्ययन स्वाध्याय है अथवा ''स्वस्य हिताय अध्ययन स्वाध्यायः।'' अपनी आत्मा का हित करने के लिए किया गया अध्ययन ही स्वाध्याय है। आग्रम ग्रंथों को साधन बना अपनी आत्मा का अध्ययन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय के माध्यम से अपनी आत्मा का अध्ययन होता है, मेरी आत्मा का लक्ष्य, स्वभाव या गुण क्या-क्या हैं, वर्तमान में मैंने कितने गुण प्राप्त कर लिए, कितने और प्राप्त करना है, उन गुणों की प्राप्ति का उपाय या मार्ग क्या है?

मैं दोषों से रहित कैसे बनूँ? मेरी आत्मा में दोष क्यों हैं? दोषों का कारण क्या है? परिहार का उपाय क्या है? दोषों का लक्षण क्या है? बिना स्वाध्याय के दोषों व गुणों की पहचान नहीं हो सकती और न ही दोषों का परिहार और गुणों का आहरण ही सम्भव है।

अतः संसार के बंधनों से आत्मा को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए दुःखों से मुक्त हो सुखों की शाश्वत दशा पाने के लिए जिनेन्द्र देव, सर्वज्ञ व सर्वदर्शी, वीतरागी प्रभु के द्वारा प्रणीत आगम ग्रंथों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

(जिज्ञासा-15)
''सकारात्मक सोच क्यों?''

समाधानः- सोच सीढ़ियों की तरह एक माध्यम है, जैसे सीढ़ियाँ ऊपर जाने में भी निमित्त बन सकती हैं और नीचे उतरने में भी, सकारात्मक सोच व्यक्ति को उत्थान की ओर, उसके अंतरंग और बहिरंग विकास की ओर ले जाती है।

किन्तु नकारात्मक सोच व्यक्ति के जीवन में सिवाय अवनति के ओर कुछ नहीं कर सकती।

नकारात्मक सोच से जीवन में कलह, दुःख, अशांति, क्षोभ, हीनता, विद्वेष, असूया, मात्सर्य, वैमनस्यकता इत्यादि विकारी भावों का जन्म होता है तथा नकारात्मक सोच वाला व्यक्ति खामोश, उदास पड़ा-पड़ा अस्वस्थ हो जाता है और दुर्भावनाओं से खोटी आयु का बंध कर दुर्गति का पात्र बनता है, वह जीवन की बहुमूल्य निधि का दुरुपयोग करता है, जैसे सुरक्षा के हेतु मिली तलवार से स्व का ही घात कर रहा है, भवन को तोड़ पत्थरों के ढेर में फँस गया है। जबकि सकारात्मक सोच वाला शत्रु को मित्र बनाने में समर्थ होता है, जीवन सुख-शांति, विशुद्धि, प्रसन्नता, आनंद, प्रेम, वात्सल्य, प्रोत्साहन, प्रेरणा आदि से युक्त हो जीवन को वरदान स्वरूप मानता है, वह स्व-पर की उन्नति में निमित्त बनता है।

जीवन के प्रतिकूलता रूपी बिखरे पत्थरों की सीढ़ी बनाकर उन्नति के शिखर को छूने में भी समर्थ हो जाता है। सकारात्मक सोच वाला सदैव व सर्वत्र, सर्वावस्थाओं में सुख-शांति व प्रसन्नता से युक्त परमानंद का भोक्ता बनता हुआ मोक्ष को प्राप्त करने का भी अधिकारी बन जाता है।

(जिज्ञासा-16)
''एकता में बल क्यों?''

समाधानः- प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि जब वस्तुओं का घनत्व कम होता जाएगा तो उनकी शक्ति में स्वतः ही वृद्धि होती जायेगी, फैलाव से शक्ति का बिखराव होता है, संकुचन से शक्ति का/मूल्य का, उपयोगिता का संवर्द्धन होता है।

क्या आप नहीं जानते एक-एक के दो अंक यदि दूर-दूर हैं तो वे एक-एक ही हैं, जब बिना किसी शर्त के एक साथ मिल जाते हैं वे दो अंक, दो संख्या न होकर एक संख्या बनते हैं, तो वे ग्यारह हो जाते हैं, दो-दो के तीन अंक हों तो दो सौ बाईस हो जाते हैं, तीन-तीन के चार हो तो तीन हजार तीन सौ तैंतीस हो जाते हैं, शून्य भी यदि किसी अंक के साथ जुड़ जाये तो उसकी कीमत को दस गुना बढ़ा देता है। तिनके जब संगठित होते हैं तब रस्सी का रूप लेकर हाथी को भी बांधने में समर्थ हो जाते हैं, जब तिनके के रूप में थे तब एक चींटी को भी बांधने में असमर्थ थे। एक-एक तिनका एक चींटी को भी छाया देने में समर्थ नहीं था, जब बहुत से तिनके मिल गये झोंपड़ी या छप्पर बन गया, सैकड़ों को भी छाया दे सकता है, एक-एक धागा किसी के शरीर को ढाँकने में समर्थ नहीं था, किन्तु वे संगठित हुए तो पूरी मानव जाति के लिए वस्त्र बन गये।

इसी तरह मानव जब तक बिखरा हुआ है, तब तक उसकी शक्ति भी बिखरी हुई होती है, संगठित होते ही शक्ति भी संगठित हो जाती है और उनमें नूतन बल का संचार हो जाता है प्राणी व्यवहार में भी संगठित होकर रहे और निश्चय में भी अपने गुणों को, शक्तियों को संगठित करे तभी वह महाबली प्रभु परमात्मा बन सकता है।

(जिज्ञासा-17)
''रात्रि भोजन त्याग क्यों?''

समाधानः- सज्जन पुरुष वे कहलाते हैं जिनकी प्रत्येक क्रिया सत्रूप हो, जो बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय रूप हो, जो आदर्श हो, जिससे स्व पर का हित हो, कल्याण हो, सज्जन पुरुषों, धर्मात्मा महानुभावों के द्वारा प्रशंसनीय, आदरणीय या विधेय हो, श्लाघनीय हो।

रात्रि भोजन करने से जीवहिंसा प्रचुर मात्रा में होती है, अतः पापों का संचय होता है, पापी व्यक्ति दुःखों को भोगता है, दुर्गति का पात्र होता है, लोक निंद्य होता है, सज्जनों के द्वारा अनुपादेय होता है।

रात्रि भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी त्याज्य है, रात्रि भोजन से शरीर में रोगों की प्रचुर मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे व्यक्ति का जीवन अस्त-व्यस्त व असंतुलित हो जाता है।

रात्रि भोजन करना ही असद् या निशाचरी प्रवृत्ति है, अतः सज्जन पुरुष निशाचरी वृत्ति को कैसे अपना सकते हैं?

रात्रि भोजन मादकता देने वाला है, विषयों के प्रति लालसा पैदा करता है, विकारों का सृजक है, दुर्गुणों का संवर्द्धक है, पापों का जनक है, चोरी जैसे अपराधों का आधार बन जाता है, बेईमानी व असफलता का संपोषक होता है, अतः दिवा-भोजन ही सज्जनों के लिए विधेय है। प्राकृतिक प्रकाश में प्रकृति ने मानव का प्राकृत भोजन स्वीकृत किया है, महापुरुष, सज्जन पुरुष व धर्मात्मा पुरुष रात्रि भोजन के त्यागी रहे तथा रात्रि भोजन का निषेध भी किया है।

अतः अपने प्रभु-परमात्मा की आज्ञा व अनुशासन का पालन करते हुए भी रात्रि भोजन का त्याग परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-18)
''जल छानना आवश्यक क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी सुख और शांति चाहता है, उसका उपाय है- धर्म को धारण करना, जीव दया को ही संसार में धर्म कहा गया है, अनछने जल की एक-एक बूंद में भी असंख्यात जीव होते हैं, बिना छना हुआ जल पीने से उन जीवों की हिंसा होगी, जो कि अधर्म है, पाप है, दुःखों व दुर्गति का कारण है। जल छानना जीवों की रक्षा करना है, अहिंसा का पालन करना है, धर्म को धारण करना है, अक्षय सुख-शांति के प्राप्त करने के मार्ग पर चलना है।

दूसरा कारण यह है कि अनछने जल में विषाक्त जीवाणु भी होते हैं, जो मानव के लिए घातक भी हो सकते हैं, कुछ जीवाणु रोग-वर्द्धक होते हैं, कुछ विकृतियों को जन्म देने वाले भी हो सकते हैं।

अतः सभी धर्माचार्यों, धर्म प्रवर्तकों व वैज्ञानिकों का स्पष्ट निर्देश है कि सुख-शांति व आरोग्य हेतु सदैव छना हुआ जल ही प्रयोग में लाना चाहिए।

(जिज्ञासा-19)
''जीवन में सरलता व सहजता आवश्यक क्यों?''

समाधानः- सरलता, सज्जनता व सत्कर्म की जननी है और सहजता आत्मशांति का आधार, जो व्यक्ति अंतरंग में जितना ज्यादा कुटिल होता है वह नियम से उतना ही ज्यादा दुःखी व परेशान रहता है।

छल-कपट, कुटिलता, अहंकार, क्रोध, लोभ, तृष्णा, विद्वेष, रागासक्ति इत्यादि दुर्गुण व्यक्ति को सरल व सहज नहीं बनने देते हैं। कुटिलता व्यक्ति को व्यक्ति से, धर्म से, सद्गुणों से, अच्छाईयों से, मानव को मानवता से, सुख-शांति, अमन-चैन से, मित्रों से, अपनों से, अच्छाईयों से, सुसंस्कारों से, धार्मिकता से तोड़कर बुराईयों के, दुःखों के, अज्ञानता के, दानवता के, कुसंस्कारों के गर्त में धकेल देती है, जीवन अज्ञान के अंधकार में लक्ष्य-विहीन व्यर्थ का भ्रमणशील बन जाता है।

इतना ही नहीं सरलता-सहजता प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है, स्थायी है, शाश्वत है, आत्मा का यह अभिन्न गुण है, लक्षण है, नियति है, प्रकृति है, वरदान है, धर्मध्यान है, सुखों का निधान है, अतः प्रत्येक प्राणी को सरल-सहज ही होना चाहिए।

(जिज्ञासा-20)

''गृहस्थ जीवन में धन की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- जिस प्रकार शरीर को समुचित रूप से जीवित रखने के लिए प्राणवायु, जल, भोजन, वस्त्र, भवन, वाहन आदि आवश्यक होते हैं, निरोगी शरीर बनाने के लिए पथ्य का सेवन व अपथ्य का परिहार आवश्यक होता है, उसी प्रकार गृहस्थ मनुष्यों को अपना गृहस्थ जीवन सुचारू रूप से संचालित करने के लिए धन की आवश्यकता है। योगी, साधु-सन्यासी, संयमीजनों को अपना यथार्थ जीवन जीने के लिए परमानंद भोगने के लिए ज्ञान रूपी धन परमावश्यक है।

तत्त्वज्ञान, संयम, तप व धर्म-ध्यान रूपी निधि अनिवार्य है, उसी प्रकार गृहस्थों को अपने षड़आवश्यक धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए तथा गृहस्थी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन आवश्यक है।

जिस प्रकार बिना तेल के दीपक नहीं जल सकता, बिना ईंधन वाहन नहीं चल सकता, बिना जल नदी नहीं बह सकती, बिना पुष्प खुशबू नहीं आ सकती, बिना बीज, जल, खाद, प्रकाश के वृक्ष नहीं रह सकता उसी प्रकार बिना धन के गृहस्थ नहीं जी सकता।

(जिज्ञासा-21)

''मानव जीवन में शंकाओं की उत्पत्ति क्यों?''

समाधानः- जब तक मानव किसी पदार्थ का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता, तो उसको उस पदार्थ के अस्तित्व, स्वरूप, लक्षण, विशेषतायें एवं गुण-दोष सम्बन्धी शंकायें बार-बार उत्पन्न होती हैं। किन्तु जब व्यक्ति उस वस्तु सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान से युक्त हो, उसके प्रति पूर्ण विश्वास या परमार्थीय पदार्थों के प्रति पूर्ण श्रद्धान्वित हो जाता है, तब शंकाओं को स्थान नहीं मिल पाता।

शंकित वही होता है जो भयभीत हो और भयभीत वह रहता है जिसे पूर्ण विश्वास न हो और पूर्ण विश्वास उसे नहीं होता जिसे उस सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान न हो या हीन शक्ति वाला हो।

शंका उत्पन्न होना मानव का सहज वैभाविक धर्म या स्वभाव है, उसका निवारण किये बिना पूर्णता की या यथार्थ लक्ष्य की सम्प्राप्ति असम्भव है।

(जिज्ञासा-22)
''प्राणियों में ईर्ष्या भाव क्यों?''

समाधानः- जब मानव न्यायमार्ग से या अपने पुण्य से या समीचीन पुरुषार्थ से आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है और उसके पीछे-पीछे चलने के लिए मजबूर हो जाता है, तब अपने से आगे बढ़ने वालों के प्रति उसके मन में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो जाता है।

यह ईर्ष्या का भाव मात्र धन के प्रति नहीं, दूसरों की चेतन या अचेतन वस्तु को देखकर भी उत्पन्न हो सकता है। किसी का राज्य, सत्ता, अधिकार, रूप, ज्ञान, कुल, जाति, सेवक, शिष्य, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, स्वजन, हितैषी, अध्यापक, शिक्षक, गुरु या अचेतन पदार्थ- वाहन, भवन, भोगोपभोग की सामग्री, वस्त्र- आभूषण, शय्या, आसन या सामग्री आदि की अधिकता से भी ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो सकता है।

(जिज्ञासा-23)
''याचना क्यों?''

समाधानः- जिस व्यक्ति की आकांक्षायें ज्यादा होती हैं, वह अधिक वस्तुओं का संग्रह करता है अथवा जो व्यक्ति अंतरंग में अतृप्त है, वह बाह्य वस्तुओं के संग्रह से तृप्ति करना चाहता है, वह अपनी तृष्णा को अग्नि को जो समता व संतोष भावना के जल से शांत की जा सकती है, उसे बाह्य वस्तुओं से शांत करना चाहता है, ऐसा व्यक्ति लोक मर्यादा का उल्लंघन कर याचना करने को तैयार हो जाता है।

जो व्यक्ति इससे भी नीचे गिर जाता है, तो चोरी करना प्रारम्भ कर देता है, किन्तु जो चोरी जैसे जघन्यतम अपराध से डरता है, वह परवस्तु में आसक्त हो याचना करने पर उतारू हो जाता है। अथवा जिस व्यक्ति को अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर भरोसा नहीं वही याचना के लिए अपने हाथ दूसरों के सामने फैलाता है।

पर वस्तु की वासना, कामना, अभिलाषा, तीव्राकांक्षा ही याचना की जननी बन जाती है।

(जिज्ञासा-24)
''अंधकार में डर क्यों?''

समाधानः- अंधकार वह घोर तम है जो आँखों वाले या ज्योति युक्त व्यक्ति को भी अंधा बना दे, अंधकार का अर्थ भी यही है- ''अंधं करोति इति अंधकारः'' जो अंधा कर दे वह अंधकार है, अंधकार ज्ञान पर पर्दा डालने वाला होता है, अंधकार में अज्ञात शत्रुओं की संभावनायें अधिक हैं, अंधकार प्रतिकूलताओं या विपत्तियों को लाने का प्रवेश द्वार बन जाता है, इतना ही नहीं अंधकार भी अपने आप में एक प्रतिकूलता है।

अंधकार विपरीत कल्पना, धारणा व विचारों की पृष्ठभूमि है, अंधकार में अनेक काल्पनिक दृश्य चित्त के आंगन में भ्रमण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, यूँ तो अंधकार भयावह होता है, फिर उसमें कल्पित दृश्य और अधिक भयावह प्रतिभासित होने लगते हैं। अतः अंधकार प्रायः अधिकांश व्यक्ति के अन्दर भय का संचार करने लगता है, उसे अपने अस्तित्व का जब खतरा दिखता है, तो वह भय से काँपने लगता है, अंधकार में भय संज्ञा शीघ्र ही जाग्रत हो जाती है।

जिस प्रकार भोजन देखकर आहार संज्ञा, युवती को देखकर मैथुन संज्ञा, सुन्दर-सुन्दर पदार्थों को देखकर परिग्रह संज्ञा जाग्रत हो जाती है। उसी प्रकार अंधकार में भय-संज्ञा जाग्रत हो जाती है।

(जिज्ञासा-25)
''मानव के चेहरे पर कभी अवसाद कभी मुस्कराहट क्यों?''

समाधानः- आकाश में गमन करते हुए सूर्य और चन्द्र आदि के उदय अस्त व गमनागमन से संसार के पदार्थ प्रकाशित व प्रतिबिम्बित होते हैं, उनका प्रतिबिम्ब कभी पूर्व की ओर होता है, कभी पश्चिम की ओर, कभी उत्तर की ओर तो कभी मध्य में, कभी वह पदार्थ पूर्व प्रकाशित हो जाता है, तो कभी अंधकारमय अदृष्टिगोचर, कभी दिन का पूर्ण प्रकाश होता है तो कभी रात्रि का घोर अंधकार। इसी प्रकार प्राणियों के जीवन में कभी पुण्य रूपी सूर्य के उदय से अनुकूलता प्रतिभासित होती है, तो कभी पाप रूपी चन्द्रमा के उदय या पुण्य रूपी सूर्य के अस्त होने से प्रतिकूलता का अनुभव होता है।

जीवन में पुण्य-पाप, धूप-छाँव की तरह आँख-मिचोली जैसा खेल खेलते हैं, जब पुण्य का उदय होता है तब चेहरे पर स्वतः ही प्रसन्नता व मुस्कराहट दिखाई देती है तथा पाप के उदय में चिंता, अवसाद, रोष, रुग्णता, दीनता आदि भाव दृष्टिगोचर होते हैं।

जिस प्रकार ढाई द्वीप के बाहर सूर्य-चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवों के विमान स्थाई हैं, वहाँ प्रकाश व अंधकार स्थाई ही होता है, कभी परिवर्तित नहीं होता है, उसी प्रकार जिन्होंने मोह का नाश कर दिया है- ऐसे वीतरागी, निर्मोही, निर्द्वेषी प्रभु के भाव ही स्थाई रूप से शांत होते हैं वे परिवर्तित नहीं होते।

(जिज्ञासा-26)
''जीवन में कभी सुख कभी दुःख क्यों?''

समाधानः- जीवन एक पगडण्डी या राह है, हम सभी संसारी जीव हैं, उस राह के राहगीर, जिस प्रकार राह में कभी धूप भी मिलती है, कभी छांव भी, कभी फूल भी मिलते हैं, कभी शूल भी, कभी आदर भी होता है, कभी अपमान भी, कभी निंदा भी होती है, तो कभी पूजा भी, कभी इष्ट वस्तु भी मिलती है, तो कभी अनिष्ट वस्तु भी, कभी मित्र भी मिलते हैं तो कभी शत्रु भी, कभी अंधकार मिलता है तो कभी प्रकाश भी, कभी चढ़ाई और कठिनाई मिलती है, तो कभी उतार और आसानी भी, कभी दुःखद अनुभूतियाँ होती हैं तो कभी सुखद अनुभूतियाँ भी।

उसी प्रकार संसारी प्राणी के जीवन में कभी तीव्र पुण्य का उदय आता है, तो कभी तीव्र पाप का उदय, कभी मंद पुण्य का उदय, तो कभी मंद पाप का उदय, कभी मंदतर, मंदतम पुण्य उदय तो कभी मंदतर व मंदतम पाप का उदय।

इन पुण्य-पाप के उदय पर ही आश्रित हैं हमारे सांसारिक सुख-दुःख, जैसा कारण वैसा कार्य, कर्मोदय कारण हैं- सुख-दुःख कार्य, भव्य जीवों का भी कोई कर्म शाश्वत उदय को प्राप्त नहीं होता, न पुण्य कर्म, न पाप कर्म- इसलिए जीवन में कभी सुख प्राप्त होता है, तो कभी दुःख।

(जिज्ञासा-27)
''सत्पात्रों को ही दान क्यों?''

समाधानः- दान देना श्रावकों का आदि धर्म है, कर्तव्य है, शिष्टाचार है, लक्षण है, नीति है, बिना दान के श्रावक व श्रमण सम्मान व पूज्यता को प्राप्त नहीं होते, श्रावक यदि दान न करे तो उसका कल्याण नहीं, श्रमण दान न करे तो भी श्रावक का हित नहीं हो सकता, श्रावक के दान पर ही श्रावक व श्रमण दोनों धर्म आधारित हैं, सत्पात्रों को दान देना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उसके साथ श्रावक भी उसी गति का पात्र बन जाता है, अच्छी नाव ही नदी/सागर पार करा सकती है, पत्थर या कागज की नौका नहीं।

लोक व्यवहार में देखा जाता है कि जिसके पास जो होता है, वह वही पदार्थ देकर उपकारी का उपकार करता है। यथा- किसी व्यक्ति ने प्याज की खेती के लिए किसी कृषक को धन दिया, तो वह कृषक अपने मालिक को प्याज भेंट करेगा, गन्ना नहीं। कहीं गन्ने की खेती के लिए धन दिया है तो वह कृषक अपने मालिक को गन्ना भेंट करता है, उसी प्रकार सत्पात्र दाता को अपने तप/साधना का १/८ भाग अर्थात् लगभग १७ प्रतिशत पुण्य/सत्कर्म प्रदान करते हैं, अथवा भूमि में जैसा बीज डालेंगे वैसा ही फल प्राप्त होगा, अच्छी भूमि में अच्छी फसल, मध्यम में मध्यम व जघन्य भूमि में जघन्य फसल, निकृष्ट भूमि में से बीज भी वापिस नहीं मिलता अर्थात् अपात्र को दान देने से कुछ नहीं मिलता, कुपात्र को दान देने से कुधर्म की वृद्धि होती है। अतः दान सदैव सत्पात्रों को ही देना चाहिए।

(जिज्ञासा-28)

''संसार में पैसे वालों की ही विशेष पूछ/प्रतिष्ठा क्यों?''

समाधानः- संसार में तीन प्रकार के गृहस्थ हैं- प्रथम- धनी, द्वितीय- निर्धनी और तृतीय वे जिन्हें न धनी कह सकते हैं न निर्धन। अमीर (धनी) व्यक्ति अपने पूर्व पुरुषार्थ से अर्जित पुण्य कर्म के उदय से आज अमीर है, अनुकूल साधन सामग्री की उनके पास प्रचुरता है, वे दूसरों की सहायता करने में सक्षम हैं, जबकि निर्धन व्यक्ति पूर्व पुरुषार्थ के अभाव में, दूसरों से ईर्ष्या करने से या दान में अंतराय डालने से, दूसरों का धन लूटने से- अर्जित पाप कर्म के उदय से निर्धन है, वे धनी लोगों को सदैव ललचायी निगाह से देखते रहते हैं, तीसरे व्यक्ति न अमीर से कुछ चाहते हैं, न गरीब को कुछ दे सकते हैं, किन्तु वे स्वयं अमीर बनना चाहते हैं, अपने ही पुरुषार्थ से। धनवान व्यक्ति वर्तमान में अपने पुण्य का फल भोग रहा है, उसके पुण्य के उदय से उसे यशकीर्ति भी मिल रही है, पुण्य के उदय से उसे प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है।

अतः धनी- धनी को मित्रता हेतु चाहता है, सम्मान देता है, निर्धनी कुछ धन पाने की इच्छा से सम्मान देता है, मध्यम वर्गीय इस भावना से सम्मान देता है कि इसकी तरह पुरुषार्थ करके, भाग्य का निर्माण करके मैं भी इसी तरह अमीर बन जाऊँ।

इसलिए संसार में पैसे वालों का सर्वत्र सम्मान होता है, किन्तु उन धनिकों का ही जो सदैव उदारता के साथ दान देते हैं, जो धन पाकर कंजूस बन गये- उनका सम्मान कोई नहीं करता उनकी कहीं पूछ नहीं होती।

(जिज्ञासा-29)

''गलती होने पर माफी माँ मा क्यों?''

समाधानः- नमकीन वस्तु (जिसमें नमक ज्यादा है) खाने पर थोड़ी मीठी चीज खालो तो नमक का खारापन, मुँह का स्वाद नष्ट हो जाता है, चरपरी मिर्च खाकर रूखी रोटी खाने से मिर्ची की चरपराहट मिट जाती है, हाथों में मिर्ची की जलन हो तो घी लगाने से दूर हो जाती है, शुगर ज्यादा हो तो मिर्ची, नीम, जामुन, तुलसी, सदाबहार आदि का सम्मिश्रण खाने से कम हो जाती है।

शरीर में चर्बी ज्यादा बढ़ गई हो तो नींबू पानी से कम हो जाती है, पैर गंदा हो गया हो तो पानी डालने से गंदगी धुल जाती है। उसी प्रकार प्रमादवश, अज्ञानतावश, कषायवश हुई गलतियों के लिए माफी माँगने से वह गलती धुल जाती है। आपने अपने दुर्व्यवहार से, गलत कृत्यों से किसी को रुष्ट किया है या उसको अपना शत्रु ही बना लिया है, वह तुम्हारा अहित करने को भी तैयार हो गया हो, तब उसके पास जाकर निश्छल भाव से विनम्र होकर क्षमा माँगने से, माफी माँगने से- यदि वह समझदार है तो अवश्य ही तुम्हें क्षमा कर देगा, तुम्हें पुनः मित्र बना लेगा।

अतः अपनी गलती रूपी कीचड़ को धोने के लिए क्षमा माँगना और क्षमा प्रदान करना आवश्यक है।

(जिज्ञासा-30)

''बुरे कार्य करने पर पाप क्यों?''

समाधानः- बुरा कार्य करने पर व्यक्ति का शरीर बुरी चेष्टा करता है, मुख से दुर्वचन निकलते हैं, मन में बुरे-बुरे विचार आते हैं, चेतना की परिणति भी पूरी हो जाती है, अर्थात् मन, वचन, काय की प्रवृत्ति अशुभ हो जाती है, अशुभ प्रवृत्तियों से जो कर्माण वर्गणायें आती हैं वे अशुभ ही होंगी, अशुभ आस्रव होगा और जब आस्रव अशुभ है तो कर्म का बंध भी अशुभ ही होगा, उस अशुभ कर्म बंध को ही पाप कहते हैं।

दूसरी ओर बुरा कार्य करने वाला अपने धन का, योगत्रय का, समय का, स्थान का दुरुपयोग करता है, दुरुपयोग करने वाला दुर्गति, दुरावस्था, दुःख व दुष्टता को प्राप्त करता है, ये सभी फल पाप के माध्यम से ही मिलते हैं, पुण्य से नहीं, इसलिए बुरे कार्य करने पर पाप लगता है। या यूँ कहें कि जैसा बीज भूमि में बोया जाता है, वैसी ही फसल आती है। गेहूँ बोने पर गेहूँ, बाजरा बोने पर बाजरा, आम बोने पर आम, बादाम बोने पर बादाम, बबूल बोने पर बबूल के फल, सेब बोने पर सेब के फल, गन्ना बोने पर गन्ना, धतूरा बोने पर धतूरा ही मिलता है, बुरा करने पर बुरा ही फल मिलता है, उस बुरा फल देने वाले कारण को तथा बुरे कार्य करने वाले परिणाम को पाप कहा जाता है, अतः पाप लगता है।

कोयला से हाथ काले, चूना से सफेद हाथ होते हैं, पुष्पों से सुगंधित, सड़े-गले पदार्थों से दुर्गन्धित, बर्फ से ठण्डे, अग्नि से गर्म, धूप से ताप व छाया से शीतलता मिलती है, जो पदार्थ जैसा है, वह वैसा ही फल देता है, बुरा कार्य बुरा है, अतः वह बुरा कर्म-पाप का भी निर्माता होता है।

(जिज्ञासा-31)

''न चाहते हुए भी क्रोध की पुनरावृत्ति क्यों?''

समाधानः- हाँ, यह सत्य है कि भला आदमी नहीं चाहता कि उसे क्रोध आये, किन्तु फिर भी भले आदमी को भी कभी-कभी क्रोध आ ही जाता है, इसके कई कारण हैं, जो निम्न प्रकार हैंः-

''मनोनुकूल कार्य न होने पर'':- जब व्यक्ति अपने अनुकूल कार्य को नहीं कर पाता तो उसे झुंझलाहट, खीज, आक्रोश, क्रुद्धता उत्पन्न हो जाती है, वह उस समय अपने क्रोध को दबा नहीं पाता।

''अपेक्षा की उपेक्षा होने पर'':- किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से जो-जो अपेक्षायें की थीं, वे जब उपेक्षित होने लगती हैं, तब उसे क्रोध आने लगता है, उसके प्रति प्रेम, दया, करुणा, क्षमा आदि के भाव तिरोहित हो जाते हैं।

''सहनशीलता का अभाव'':- जो व्यक्ति सहनशील नहीं होते, वे तुरंत ही आपे के बाहर हो जाते हैं, सहनशील व्यक्ति अपने क्रोध पर काबू पा लेते हैं, उसे प्रकट नहीं होने देते, मुस्कराते हुए क्रोध को थूक देते हैं।

''क्रोध कषाय का तीव्रोदय'':- जब क्रोध कषाय का तीव्र उदय होता है, तब बिना किसी निमित्त के भी अपने-आप क्रोध आने लगता है, जब क्रोध-कषाय का उपशम हो जाता है, तो वह क्रोध अपने आप शांत भी हो जाता है।

''क्षमा रूपी जल का अभाव'':- जिस व्यक्ति के पास क्षमा रूपी जल नहीं है, उसका हृदय प्रेम से रहित शुष्क जंगल की तरह ही है, तब आपस में बातें करते हुए मानो बासों की रगड़ रूपी स्पर्श या व्यवहार से क्रोध रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, यदि क्षमा रूपी जल पर्याप्त हो तो क्रोध रूपी अग्नि नहीं लग सकती।

(जिज्ञासा-32)

''जीवन में आसन, योगा, प्राणायाम क्यों?''

समाधानः- जिस प्रकार एक कुशल गृहिणी रोटी बनाते समय रोटी को कभी अलटती है, कभी पलटती है, कभी दबाती है, कभी घुमाती है, उठाती है, कभी तवे पर कभी कोयले पर या गैस पर रखती है, जिससे रोटी जले नहीं, कच्ची भी न रहे या एक सईस अपने घोड़े को कभी दौड़ाता है, कभी हाथ फेरता है, कभी चाबुक भी मारता है, कभी धीरे-धीरे चलाता है, कभी दाना-पानी ज्यादा देता है, कभी कम देता है या नहीं देता, जिससे घोड़ा अड़ियल या दुष्ट स्वभाव का न हो जाये।

इसी प्रकार एक ड्राइवर अपनी गाड़ी को कभी तेज रफ्तार में, कभी मंद रफ्तार में चलाता है, कभी खड़ी कर देता है, कभी सफाई करता है, कभी धुलाई भी करता है, कभी उसका मोबीआयल बदलता है, गाड़ी के पार्ट/हिस्से खोलता है, फिर साफ करके लगाता है, जिससे गाड़ी सही चलती है।

जिस प्रकार एक अध्यापक अपने शिष्य को कभी पढ़ाता है, कभी उससे सुनता है, कभी उसका उत्तर देता है, कभी प्रश्न पूछता है, कभी स्नेह देता है, कभी डाँटता-फटकारता है, कभी परीक्षा लेता है, कभी पुरस्कार देता है, जिससे वह सदैव योग्य रहे, अयोग्य, मूर्ख या दुःखद न बन पाये, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक योगा, प्राणायाम या आसनों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे शरीर आलसी, रोगी, प्रमादी, कार्य करने के अयोग्य न हो पाये। आसन, योगा, प्राणायाम के माध्यम से जीवन विकसित होता है, चित्त प्रसन्न, चेहरा खिला हुआ, व्यवहार में मधुरता, शरीर में स्फूर्ति, बुद्धि पर नियंत्रण, योगों पर- इंद्रियों पर संयम, स्व के ऊपर पूर्ण अनुशासन करने में वह समर्थ हो जाता है और लक्ष्य को सहजता में ही प्राप्त कर लेता है।

(जिज्ञासा-33)

''जीवन में शिष्ट-मिष्ट व सभ्य व्यवहार ही क्यों?''

समाधानः- प्रकृति का एक नियम है, वह जैसा लेती है, वैसा ही वापिस भी कर देती है, वह बिना लिए कुछ देती भी नहीं है, कुए के पास, पर्वतों के बीच घने जंगल में या किसी खण्डहर में या गगन चुम्बी शिखर से युक्त मंदिर में जो शब्द आप बोलते हैं, वे गूँजते हुए टकराकर ज्यों की त्यों तुम्हारे कान में ही वापिस आ जाते हैं, जो हम दूसरों को बाँटते हैं, हमें बटोरने के लिए भी वही मिलता है, प्रेम के बदले प्रेम, घृणा के बदले घृणा, आदर के बदले आदर, अपमान के बदले अपमान, मित्रता के बदले मित्रता, शत्रुता के बदले शत्रुता।

आप जानते हैं कि नमक के बदले शक्कर नहीं मिलती, वाक्य प्रहार के बदले मीठा चुम्बन नहीं मिलता, तलवार के वार के बदले में शुभालिंगन नहीं मिलता, जो देते हैं वही मिलता है।

इसलिए हमें जो चाहिए वही दूसरों को देना चाहिए, चूँकि हम सभी चाहते हैं कोई भी व्यक्ति हमसे अशिष्ट, कटु, मूर्खतापूर्ण व्यवहार न करे, हमारी निंदा न करें, हमारा अपमान न करें, हमें दुत्कारे, फटकारे नहीं, तो बस हमें भी उसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

जैसा हम चाहते हैं- कोई हमसे मीठा बोले, विनम्र व्यवहार करे, प्रेम- वात्सल्य दे, हमें उदारता का परिचय दें, हमें अपना सुहृद, हितैषी मित्र मानें, हमारे साथ शिष्टाचार का पालन करें, हमारे साथ सभ्यतापूर्ण, सारगर्भित, हृदय को आनंदित करने वाले शीतल वचन बोले, तो तुम्हें भी ऐसे ही वचन बोलने का आज से ही संकल्प ले लेना चाहिए।

(जिज्ञासा-34)

''मुक्ति की अभिलाषा क्यों?''

समाधानः- परतंत्रता की समस्त बेड़ियों को काट देना ही स्वतंत्रता है, सुख है, मुक्ति है, मोक्ष है। परतंत्रता बंधन है, गुलामी है, दुःख है, कष्ट है, संसार है।

परतंत्रता हमारा शुद्ध स्वभाव, नियति या प्रकृति नहीं है, राग-द्वेष के कारण जीव/आत्मा बंधन को प्राप्त हो जाता है, जब बंधन के कष्ट असहनीय हो जाते हैं, या बंधन के कारणों का बोध होता है अथवा बंध में निर्बंध की कल्पना जाग्रत होती है, तब मानव या प्राणी मुक्ति के लिए पुरुषार्थी होता है।

मुक्ति प्रत्येक प्राणी का शुद्ध स्वभाव है, इसलिए तो बंधन कोई नहीं चाहता, पिंजड़े में बंद पंक्षी जब तक बंधन के बोध से युक्त नहीं, तब तक बंधन उसे अच्छा लग सकता है, किन्तु बंधन का बोध ही मुक्ति की अभिलाषा का जनक है।

(जिज्ञासा-35)

''जीवन में संयम की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- बिना ब्रेक की गाड़ी, बिना लगाम का घोड़ा, निरंकुश हाथी, बिना चाबुक का बैल, बिना रिमोट कंट्रोल के मशीनरी या विद्युत उपकरण- मानव जीवन में वरदान के बजाय अभिशाप ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि ये मानव जाति का कल्याण या संहार तक कर सकते हैं, उसी प्रकार मानव भव जो अत्यंत दुर्लभ होता है- अनेक पुरुषार्थों, प्रयत्नों, साधनाओं या भावनाओं के बावजूद प्राप्त होता है। जिस मानव जीवन को पाकर नर-पुंगव नारायण भी बन सकता है। किन्तु संयम के बिना यह नारकीय जीवन बिताने को मजबूर हो जाता है, निस्सीम दुःखों के सागर स्वरूप नरक के दारुण दुःख भोगता है, तिर्यंच गति के अपार दुःखों की मूलधन सहता है।

संयम ही प्राणी को दुःखों से मुक्ति दिलाने में समर्थ है, संयम ही इह लोक और परलोक में सुख का कारण है, संयम ही मानव जीवन का श्रंगार है, संयम ही मानव जीवन का सार है, संयम ही मोक्ष का आधार है, अतः दुःखों से मुक्ति और शाश्वत सुखों की भुक्ति के लिए संयम अनिवार्य शर्त है।

(जिज्ञासा-36)
''जीवन में अपराध क्यों?''

समाधानः- हम सभी संसार में अनादिकाल से परिभ्रमण कर रहे हैं, इसका कारण है- राग, द्वेष एवं मोह की विपुलता। मोह प्राणी को सत्य की ओर से अंधा बना देता है, आत्मा/जीव के शुद्ध स्वरूप पर पर्दा डाल देता है, राग-द्वेष आत्मा को संसार में भ्रमण कराते रहते हैं

जब तक ये संसारी प्राणी सम्यक्त्व, सकल संयम, परम तप, आत्मलीनता रूप शुक्ल ध्यान के चरम रूप को प्राप्त नहीं करता, तब तक योगों की वक्रता से, कषायों की तीव्रता से, मिथ्यात्व के उदय से, प्रमाद और अज्ञानता से निरंतर अपराध ही अपराध होते रहते हैं।

जब तक संसार मार्ग और संसार के कारणभूत संस्कारों का परित्याग नहीं होता, तब तक जल के नीचे की ओर बहने की प्रवृत्ति, अग्नि शिखाओं की ऊर्ध्वारोही ज्वालाओं की तरह या जल के शीतल होने की तरह प्राणियों के द्वारा अपराध सहज सम्भव है।

(जिज्ञासा-37)
''बालक में भगवान का सा रूप क्यों?''

समाधानः- बाल्यावस्था में प्राणी संसार के क्रिया-कलापों से, राग-द्वेष युक्त छल-कपट के व्यवहार से अनभिज्ञ रहता है, वह इन्द्रिय विषय व विकारों से अनजान होता है, कषाय का आवेश भी नहीं होता, क्योंकि उस अवस्था में वह मानापमान के बोध से भी रहित होता है।

अहंकार, हीनता, मायाचारी या लोभ जैसी असद प्रवृत्तियों का भी उसके जीवन में प्रादुर्भाव नहीं हो पाता, अतः बालक में सहजता, सरलता, भोलापन, नैसर्गिक निर्दोषता पाई जाती है, उसका प्राकृतिक दिगम्बर रूप विषय, विकारों से रहित समुद्र, नदी, पर्वत व वन की तरह, सूर्य, चन्द्रादि विमानों की तरह, आकाश की तरह निरावरण व निष्कलुष है।

अतः बालक में भद्रपुरुषों को, सज्जनता की प्रतिमूर्ति रूप महानुभावों को भगवान का सा रूप दिखाई देता है।

(जिज्ञासा-38)
''जीवन में शरण या आश्रय की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- संसारी प्राणी कर्मों के आधीन है, जीवन में कभी पुण्य का, कभी पाप का उदय चलता ही रहता है, जीवन नदी की धार की तरह है, कभी बाढ़ तो कभी कम जल, तो कभी पूर्ण शुष्कता, कभी गति में पूर्ण तीव्रता तो कभी ठहराव, कभी निर्मलता तो कभी गंदलापन, जीवन में कभी समर्थपना प्रतीत होता है तो कभी अनाथपना, कभी स्वावलंबन की सामर्थ प्रतीत होती है तो कभी परावलम्बन की अनिवार्यता।

अतः जीवन में सब कुछ अनिश्चित है और अनिश्चितता शंका, भय और चिंताओं को जन्म देती है, उन चिंताओं, भयों व शंकाओं से मुक्ति पाने हेतु प्राणी किसी सबल आश्रय या परम शरण की खोज करता है, जहाँ पर यह अनिश्चितता निश्चित रूप से पूर्णतः नष्ट हो जाये। इसलिए असमर्थ प्राणी सदैव शरण या आश्रय को जीवन में परम अनिवार्य मानता है।

(जिज्ञासा-39)
''किसी पदार्थ की छाया या प्रतिबिम्ब क्यों?''

समाधानः- जब कोई स्थूल पौद्गलिक पदार्थ या वस्तुऐं एक ओर से प्रकाशित हों, दूसरी ओर से अप्रकाशित तब उस वस्तु का प्रतिबिम्ब या छाया का निर्माण हो जाता है।

यदि वह पदार्थ चारों तरफ या दशों दिशाओं से समान रूप से पूर्ण प्रकाशित हो, तो उसका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा, सूक्ष्म पौद्गलिक पदार्थों का भी प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर नहीं होगा। जो वस्तुयें पारदर्शी हैं- जिनमें प्रकाश आर-पार हो जाता है, उनका भी प्रतिबिम्ब या छाया नहीं पड़ेगी।

(जिज्ञासा-40)

''असफल होने पर पुनः कोशिशें क्यों?''

समाधानः- जब कोई प्राणी किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए पूर्ण समर्पित हो जाता है, उस कार्य को पूर्ण करने के लिए संकल्पित हो गया हो, प्रतिज्ञा में बंध गया हो तब उस प्राणी को अंतरंग का संकल्प या प्रतिज्ञा उस कार्य को पूर्ण करने के लिए बार-बार प्रेरित करती है।

यदि एक बार में सफल हो गया तब दूसरे कार्य की प्रेरणा मिलती है, यदि प्रथम कार्य में ही सफल नहीं हुआ, तो वह दूसरी बार, तीसरी बार, चतुर्थ बार... बार-बार कोशिशें करता है और अंत में सफल होकर ही रहता है। जैसे दीवार पर चढ़ती हुई चींटी बार-बार गिर जाने पर भी हिम्मत नहीं हारती, मकड़ी जाल बनाते समय कई बार असफल होने पर भी अंत में सफल हो ही जाती है।

इस तरह मानव भी अपने प्राकृतिक गुण-धर्म के कारण अपने कार्य को पूर्ण करने के लिए बार-बार असफल होने पर भी सफलता हेतु बार-बार कोशिशें करता है।

(जिज्ञासा-41)

''सर्वस्व त्याग रूप दिगम्बर दीक्षा क्यों?''

समाधानः- जैन दर्शन में हिंसा, झूठ, चोरी व कुशील की तरह से परिग्रह को भी पाप माना जाता है, पाप ही दुःख है, दुर्गति का आधार है, भव-भ्रमण का कारण है। प्रत्येक संसारी प्राणी अपने अनंत-सुख रूप स्वभाव को प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु वह मोहनीय कर्म के क्षय के बिना असम्भव है, मोहनीय कर्म का क्षय संयम के द्वारा ही संभव है, संयम का अर्थ है-

पांच पापों का पूर्णतया त्याग, पंचइन्द्रिय व मन पर नियंत्रण, सर्व प्राणियों की रक्षा का संकल्प।

पापों से बचे बिना संयमी बनना असम्भव है, पाप विकल्पों के कारण हैं, आर्त्त-रौद्र ध्यान के कारण हैं।

परिग्रह का त्याग किये बिना आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग भी असम्भव है, अतः शाश्वत सुख पाने हेतु, अनंत सुखादि गुणों को पाने हेतु, यथाजात दिगम्बर बनकर सर्वस्व त्यागकर, आत्माराधना, संयम-साधना करना अनिवार्य है।

(जिज्ञासा-42)
''जीवन में किंतु, परन्तु, लेकिन, चूँ कि इत्यादि शब्द क्यों?''

समाधानः- संसार की प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मा है, उसे अनेकांतात्मक रूप से ही जान सकते हैं, स्याद्वाद रूपी कथन पद्धति ही वस्तु के सम्यक् ज्ञान कराने में समर्थ कारण है, स्याद्वाद का अर्थ है- पदार्थ किसी अपेक्षा से ऐसा ही है, दूसरी अपेक्षा दूसरी तरह का है।

जब वक्ता एक धर्म का, गुण का, विशेषता का, क्रिया का कथन करता है, तो वही कथन प्रधान होता है, जिसका उस समय कथन नहीं कर रहा है, वह गुण, धर्म, विशेषता या क्रिया गौण हो जाती है, उसका अभाव नहीं होता, उस गौण धर्म की प्रस्तुति हेतु या गौण धर्म के अस्तित्व का बोध कराने के लिए किन्तु, परन्तु, चूंकि, लेकिन आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

जैसे पदार्थ द्रव्यत्व की अपेक्षा नित्य है, किन्तु पर्याय की अपेक्षा अनित्य या मैं ऐसा कर सकता हूँ, लेकिन करूँगा नहीं अर्थात् नहीं भी कर सकता हूँ। वह पाप कर सकता है, चूंकि सुख का इच्छुक है, इसलिए वह पाप करेगा नहीं इत्यादि।

जैन दर्शन के हृदय को समझने के लिए सप्त भंगों को समझ लेना बहुत जरूरी है, वह प्रत्येक पदार्थों की अस्तित्व व नास्तित्व दोनों धर्मों की सत्ता स्वीकार करता है।

(जिज्ञासा-43)
''जीवन में सुदृढ़ संकल्प की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- जब प्राणी के जीवन में किसी एक लक्ष्य को प्राप्त करने की भावना तीव्र हो उठी हो, तब वह व्यक्ति उस लक्ष्य को प्राप्त करने का संकल्प करता है, संकल्प में दृढ़ता तभी आती है, जब उसकी भावना में तीव्रता हो, बहु संकल्प होने पर वे सभी शिथिल संकल्प होते हैं, एक संकल्प होगा तो अत्यंत सुदृढ़ होगा। सुदृढ़ संकल्पी कभी मार्ग के व्यवधानों की परवाह नहीं करता, सुदृढ़ संकल्प के सामने प्रतिकूलतायें भी मानों अनुकूलताओं में ढल जाती हैं अथवा प्रतिकूलता संकल्प को सुदृढ़ करने के लिए आती हैं, सुदृढ़ संकल्प से विश्व की सभी शक्तियाँ उसकी सहयोगी बन जाती है, सुदृढ़ संकल्प सकारात्मक ऊर्जा का सृजक होता है, जिससे कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है। कार्य को सम्पन्न करने के लिए सुदृढ़ संयम ही अनिवार्य है।

(जिज्ञासा-44)
''जीवन में परेशानियाँ क्यों?''

समाधानः- प्रत्येक संसारी प्राणी का जीवन पुण्य व पाप से सम्बन्धित है, पुण्य के उदय में उसे अनुकूल वस्तुओं का, व्यक्तियों का, समय का, स्थान का, निमित्तों का संयोग प्राप्त होता है तथा पाप के उदय में प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति, समय, स्थान या बाधक कारणों का संयोग मिलता है।

जीवन में परेशानियाँ पाप कर्म के उदय से आती है, किन्तु वे परेशानियाँ पुण्य की प्रेरक होती है, परेशानियाँ मानव को महान बनाती हैं, जो मानव परेशानियों से हार मान जाते हैं, वे कभी मंजिल तक नहीं पहुँच सकते, जो परेशानियों को परेशान कर आगे बढ़ते हैं- मंजिल उनकी स्वतः ही चल कर आ जाती है।

अतः परेशानियाँ इसलिए आती है जिससे कि आपको यह ज्ञान हो जाये कि आपने भी किसी के मार्ग में परेशानी डाली है, अतः वही परेशानी आपको प्राप्त हुई है, अब संकल्प करो कि मैं किसी को परेशान नहीं करूँगा, तब तुम्हारे जीवन में भी परेशानी नहीं आयेगी।

(जिज्ञासा-45)
''प्राणी को घबराहट क्यों?''

समाधानः- संसार में दो तरह के प्राणी होते हैं, एक वे जिन्हें अपनी शक्ति, क्षमता, गुणवत्ता, स्वभाव, धर्म, विशेषता, तत्त्वज्ञान का बोध है, जो शुद्ध सम्यक् दृष्टि है, धर्म के प्रति आस्थावान है, तत्त्ववेत्ता है।

दूसरे वे प्राणी हैं जो अपनी शक्ति, क्षमता, योग्यता, गुण, स्वभाव,धर्म,विशेषताओं व विशेष ज्ञान के बोध से रहित हैं। जो दूसरे प्रकार के प्राणी हैं वे किसी अकस्मात उदय में आये पाप कर्म के उदय से या अकाल्पनिक व अचिंत्य वैभव को पाकर या अप्रत्याशित घटना को देखकर खबड़ा जाते हैं। किन्तु जो तत्त्ववेत्ता होते हैं, साहसी हैं, वे निडर ही रहते हैं, उन्हें किसी बात से घबराहट नहीं होती, कितनी भी परेशानियों के मध्य हो तब भी वे निडर रहते हैं, प्रसन्न रहते हैं, धैर्य और साहस नहीं खोते।

(जिज्ञासा-46)
''जीवन में दुःख क्यों?''

समाधानः- जो व्यक्ति संसार के पदार्थों के स्वभाव के ज्ञान से अनभिज्ञ है, तत्त्वज्ञान से विहीन है, वह व्यक्ति सदैव दुःखी ही रहता है, उसे कोई दुःखी नहीं कर सकता। पाप कर्मों के उदय से प्राणी सदैव दुःखों का दुर्गति का दुरावस्थाओं का शिकार बन जाता है। जब प्राणी के जीवन में अपनी अपेक्षाओं की या अपेक्षित कार्यों की पूर्ति नहीं होती है, अपेक्षाओं की उपेक्षा होने लगती है, तब व्यक्ति दुःख का अनुभव करता है।

जिस व्यक्ति के जीवन में जितनी ज्यादा अभिलाषायें, इच्छायें, आकांक्षायें है, समझो वह उतना ही ज्यादा दुःखी है। मोहनीय कर्म का उदय ही मूलरूप से दुःख का कारण है, इसके अभाव हो जाने पर प्राणी पूर्ण सुखी हो जाता है, फिर संसार का कोई पदार्थ उसे दुःखी नहीं कर सकता।

जीवन भी धूप-छाँव की तरह है, जिसमें कभी पुण्य का उदय, कभी पाप का उदय रहता है, पापोदय से प्रतिकूलतायें उपस्थित होती हैं, यह प्रतिकूलतायें ही दुःख हैं।

(जिज्ञासा-47)
''आँखों में पानी क्यों?''

समाधानः- प्राणियों की आँखों के अन्दर अत्यंत संवेदनशील तत्त्व होते हैं, इसलिए नेत्र शरीर में अत्यंत विशेष हैं, नेत्र व्यक्ति की भावनाओं को समझते हैं, अपनी भावनाओं को बिना भाषा या शब्द के व्यक्त भी करते हैं। जब-जब प्राणी के जीवन में दुःख के निमित्त आते हैं, तब-तब नेत्रों के नीचे सफेद और काला गोलक का नीचे वाला भाग प्रभावित होता है, उसमें जल आँसू बनकर निकलता है, या आँख में तिनका या धूल पड़ जाये या कोई अत्यंत खुशी का प्रसंग सामने आ जाये, तब आँखों का आर्द्र भाग प्रभावित होता है और नयनों में आँसू छलक आते हैं।

जो व्यक्ति बहुत ज्यादा रो लेता है, तब वह कठोर बन जाता है, उसके अन्दर की संवेदनशीलता नष्ट हो जाती है, फिर उसकी आँखों में आँसू नहीं आते, तभी तो कभी-कभी यह भी कहते हुए सुनने में आता है कि अब मुझे रोना नहीं आता, रोते-रोते मेरी आँखों के आँसू सूख गये, संवेदनशीलता की तीव्रता ही आँखों में पानी का कारण है।

(जिज्ञासा-48)
''कर्तव्यों का पालन सदैव क्यों?''

समाधानः- जिस प्रकार कृषि के लिए भूमि, बीज, खाद, जलवायु आवश्यक है, व्यवसाय हेतु वस्तुओं का आदान-प्रदान, धन आवश्यक है, शरीर के लिए भोजन, जल, प्राणवायु आवश्यक है। उसी प्रकार आत्मा को सुखी बनाने के लिए धर्म भी आवश्यक है। शरीर को जीवंत रखने के लिए भोजन, पानी, वस्त्र, प्राणवायु प्रतिदिन या सदैव जरूरी है। तब आत्मा को समीचीनता या यथार्थ जीवंतता प्रदान करने हेतु धर्म का, कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है- सद्कर्तव्यों का पालन करना भी धर्म की श्रेणी में ही आता है।

कर्तव्यों की उपेक्षा करने वाला मानव अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता, कर्तव्यों की भूमि पर अधिकारों के वृक्षों का बीजारोपण सम्भव है।

कर्तव्यों की झोली में ही अधिकारों के फल-फूल खिलते व मिलते हैं, शाश्वत सुख-शांति पाने के लिए सदैव कर्तव्य पालन करना भी परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-49)
''मान-मर्यादा का पालन क्यों?''

समाधानः- जिस प्रकार खेत में विद्यमान फसल की सुरक्षा हेतु बाड़ लगाई जाती है, पौधे की सुरक्षा हेतु जाल लगा देते हैं, शरीर की सुरक्षा हेतु भोजन, पानी के साथ-साथ वस्त्र आदि पहनते हैं या भवन का आश्रय लेते हैं, राज्य की सुरक्षा हेतु वाहन परकोटा होता है, राजा की सुरक्षा हेतु किला बनाते हैं, धर्म की सुरक्षा हेतु व्रत, नियम, संयम को धारण करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक जीवन की सुरक्षा हेतु सामाजिक मान-मर्यादा का पालन करना भी आवश्यक है। म्यान से रहित तलवार खतरनाक होती है, रक्षण की जगह स्व को घात भी कर सकती है, आभूषणों व रत्नों की सुरक्षा हेतु डिब्बा, पेटी बनाते हैं, सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु चार दीवारी व ताले लगाते हैं, बहू अपने शील की सुरक्षा हेतु वस्त्रों से अपने आपको आवरणित कर रहती है, उसी प्रकार अपनी मान-मर्यादा सीमा रेखा में रहना बहुत जरूरी है।

जिसने भी अपनी मान-मर्यादा या सीमा रेखा का उल्लंघन किया, वह दुःखों को ही प्राप्त हुआ वैदिक परम्परा में कहा है कि राम ने स्वर्ण मृग का पीछा किया, अपनी मर्यादा तोड़ी तो सीता को खो बैठे, लक्ष्मण भाई की आज्ञा का उल्लंघन कर सीता को छोड़कर चले गये, तो दुःखी हुए, सीता ने लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया वह भी दुःखी, रावण ने कुल की मर्यादा का उल्लंघन किया तो उसका भी विनाश, अतः कभी अपनी मान-मर्यादा का उल्लंघन मत करो।

(जिज्ञासा-50)
''शील व्रत का पालन क्यों?''

समाधानः- शील ही संसार का सबसे बड़ा व्रत है, परम धर्म है, स्वभाव है, चेतना का शुद्ध स्वभाव है, गुण है, शील ही सर्व दुःखों को नष्ट करने वाला है, सर्व सुखों को देने वाला है, शीलवान नर-नारी लोक में पूज्य होते हैं। शील सभी धर्मों का आधार है, शील का अर्थ है, अपनी आत्मा में वास करना, अपनी मर्यादा में रहना, शाश्वत सुख का भोग करना, चेतना के गुणों का अनुभोग करना।

जो दुःखों से बचना चाहते हैं, दुर्गति का नाश करना चाहते हैं, भव, भ्रमण को नष्ट कर आत्म-रमण करना चाहते हैं, जो मरण का मरण कर मुक्ति रमा का वरण करना चाहते हैं, जो परमात्मा व शुद्धात्मा की शरण और उत्कृष्ट चरण को परमात्मा के चरण, शरण, आचरण को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें शीलव्रत का पालन करना बहुत जरूरी है।

(जिज्ञासा-51)
''जीवन में सत्यवादिता क्यों?''

समाधानः- सत्य समस्त धर्मों की भूमि है, सकल गुणों का आधार है, परमात्मा का प्राण है, सत्य, शाश्वत सत्ता का अविनश्वर बीज है, सत्य ही सारभूत है, सत्य की शीतल छाँव में आत्मा के सम्पूर्ण गुण धर्मों का संवर्द्धन होता है, सत्यवादी ही लोक पूज्य हो जाता है, परम सम्मानीय समादरणीय होता है, सत्यवादी ही विश्व पर राज्य करने का अधिकारी है, सत्यवादी ही अपनी आत्मा पर, दूसरों की आत्मा पर अनुशासन करने में सफल हो सकता है, सत्यवादी ही लोक कल्याण करने में सक्षम होता है।

सत्यवादिता- सत्य धर्म की जननी है, सत्यवादी निर्भीक, धैर्यशाली, तत्त्ववेत्ता, स्व-पर अन्वेषक, सर्वात्मानुभूति का आनंद ले सकता है। इसके विपरीत असत्यवादी पापों की कीचड़ में पड़ता है, दुर्गति, दुःख, दुरावस्थाओं का शिकार बनता है, लोक निंद्य, उपेक्षणीय, असमर्थ, असहाय, सर्वादीन अवस्था को प्राप्त करता है। अतः सुखी जीवन के लिए- जीवन में सत्यवादिता परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-52)
''जीवन में अचौर्यव्रत की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी अपने पदार्थों की, वस्तुओं की, परिग्रह की, धन-सम्पत्ति की सुरक्षा करता है और सदैव चाहता भी यही है कि कोई उसके धन का, स्वजनों का, मित्रों का, प्राणों का अपहरण न करे।

आचार्यों ने, ऋषियों-मुनियों ने, संतों-भगवंतों ने अचौर्य व्रत का विधान किया, जो दूसरों की किसी भी वस्तु की या स्वजन की चोरी नहीं करता, तो उसकी भी किसी वस्तु आदि की चोरी नहीं होती, जो जैसा करता है, वैसा भरता है।

अतः अपने धन आदि की सुरक्षा के लिए, बैंक, बीमा कम्पनी, पुलिस या गार्ड की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इन सब व्यवस्थाओं के रहते हुए भी चोरी हो जाती है, किन्तु जो अचौर्य व्रत का पालन करता है, उसके यहाँ कभी चोरी नहीं होती।

(जिज्ञासा-53)
''अहिंसा धर्म/दया धर्म की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी अपने प्राणों की सुरक्षा करना चाहता है, वह मृत्यु से सदैव डरता है और अमरत्वपने को प्राप्त करना चाहता है, प्रत्येक प्राणी को अपने प्राण वैसे ही प्रिय हैं जैसे हमें अपने प्राण प्रिय हैं।

हम निर्भीक जीवन चाहते हैं, इसलिए हमें प्रत्येक प्राणी को अभयदान देना चाहिए, अहिंसा ही परम धर्म है, दया धर्म का मूल है, यह दया धर्म ही प्रत्येक प्राणी को शाश्वत, सुख शांति प्रदान करने में समर्थ है, यह अहिंसा/दया धर्म ही स्वर्ग मोक्ष का कारण है, हिंसा ही पाप है, अहिंसा ही परम पुण्य है, तपस्या है, ज्ञान है, संयम है, मोक्षमार्ग है।

(जिज्ञासा-54)
''परिग्रह का त्याग क्यों?''

समाधानः- परिग्रह सर्व पापों का बीज है, सर्व कषायों का कारण है, आर्त्त-रौद्र ध्यान का हेतु है, परिग्रहवान् व्यक्ति नरकादि दुर्गति का पात्र बनता है, परिग्रहवान् व्यक्ति को ही नवग्रह की पीड़ा होती है, बहुत परिग्रहवान व्यक्ति धर्मध्यान का अधिकारी नहीं होता, परिग्रही संसार, शरीर, भोगों में आसक्त रहता है, उसमें भवभीरुता व संवेग की भावना भी नहीं होती।

परिग्रही साधक कभी भी निर्दोष संयम-साधना नहीं कर सकता, जिस प्रकार उदर की कब्ज/मल संचय रोग का कारण होता है, उसी प्रकार धन का संचय निःसंदेह दोष का ही कारण होता है। भले ही सुई के छेद में से ऊँट निकल जाये, किन्तु बहु आरम्भी, बहु परिग्रही की सुगति नहीं हो सकती।

गधे के सींग और आकाश में पुष्प और बंध्या स्त्री के पुत्र किसी अपेक्षा संभव हो भी जाये, किन्तु परिग्रहवान् व्यक्ति को कभी निर्विकल्प आत्मध्यान नहीं हो सकता।

(जिज्ञासा-55)
''परिग्रह पाप क्यों?''

समाधानः- निंदनीय कार्य, निंदनीय वचन, निंदनीय विचार, निंदनीय भावनायें पाप कहलाती हैं, हिंसा, झूठ, चोरी और कुशील की तरह परिग्रह का संचय भी पाप है। यद्यपि हिंसा में केवल हिंसा है, असत्य में असत्य और हिंसा दो पाप हैं, चोरी में चोरी असत्य व हिंसा तीन पाप हैं। कुशील सेवन में कुशील, चोरी, असत्य व हिंसा ये चार पाप हैं, परिग्रह संचय में परिग्रह, कुशील, चोरी, असत्य व हिंसा ये पाँच पाप हैं।

परिग्रह का अर्थ है परि-समंतात-चारों तरफ से जो आत्मा को ग्रसे, गुणों को, स्वभाव को नष्ट करे या पर पदार्थों में मूर्च्छित हो जाना धर्मध्यान व पुण्य कार्य को भूल जाना ही परिग्रह है।

परवस्तुओं में लीनता ही कुशील है, बिना परिग्रह के व्यक्ति कभी भी महापापी नहीं हो सकता, यह परिग्रह ही सप्तव्यसन या महापाप का कारण है।

परिग्रह धर्मध्यान, संयम, सदाचार, संतोष, करुणा, उदारता, नम्रता, सत्यता, सरलता व सहजता को नष्ट करने वाला है, इसलिए पाप ही नहीं, अपितु महापाप का जनक भी है।

(जिज्ञासा-56)
''जीवन में विनम्रता क्यों?''

समाधानः- संसार में दो प्रकार के प्राणी हैं, प्रथम विनयशील, द्वितीय अहंकारी, घमण्डी।

विनयशील व्यक्ति गुणी, ज्ञानी, संयमी, तपस्वी, साधक व महान् व्यक्तित्व का धनी बन जाता है, अहंकारी व्यक्ति हिंसक, मिथ्यावादी, अदत्तग्राहक, कामी व परिग्रहासक्त हो जाता है।

इतना ही नहीं अहंकारी, अहंकारवश, क्रोधी, छली, कपटी, अगम्यगामी, कदाचारी, मिथ्याभाषी, असंयमी, कृतघ्न बनकर अनेक पापों का कर्ता बन जाता है, अहंकार पतन की सीढ़ी है, दुःखों का द्वार है, स्व के प्रति धोखा है, स्वस्वरूप अनभिज्ञ होना है, गुणदाहक अग्नि है, इसके विपरीत विनम्रता-गुणग्राहक चुंबक है, सम्पूर्ण कलाओं का आधार है, पूर्ण विद्याओं व ज्ञान की कुंजी है, कर्मक्षय व संवर का कारण है, पापों का परिहारक है, अतः जीवन में आत्मकल्याण हेतु विनम्रता अत्यंत आवश्यक है।

(जिज्ञासा-57)
''जीवन में संतोष वृत्ति क्यों?''

समाधानः- यदि जंगल में आग लगी हो तो उसे बुझाने के लिए मूसलाधार वर्षा आवश्यक होती है, क्षुधा की शांति के लिए भोजन, तृषा की शांति के लिए जल और रोग की शांति के लिए औषधि परमावश्यक है।

संयम विहीन संसार का प्रत्येक प्राणी आज लोभ की अग्नि में जल रहा है, कोई ज्यादा, कोई कम किन्तु जल रहा है, प्रत्येक प्राणी की तृष्णा व लोभ की अग्नि को बुझाने के लिए समता व संतोष का जल ही समर्थ है, संतोष वृत्ति का जन्म समता स्वभावी श्रमणों के दर्शन से या उनके परम सान्निध्य में बैठने से ही सम्भव है। जिसे आत्मीक सुख की प्राप्ति की इच्छा प्रकट हुई है, उन सभी प्राणियों को प्रयत्न करके समता व संतोष भाव को अवश्य ही धारण करना चाहिए।

(जिज्ञासा-58)
''जीवन में तपस्या आवश्यक क्यों?''

समाधानः- संसार में सम्यक् तप ही एक ऐसी उत्कृष्ट जीवन जीने की शैली है कि जिसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, तप ही कर्मरूपी पर्वतों के लिए वज्र की तरह से है, तप संसार सागर से पार करने वाला अनुपम जहाज है, तप आत्मा रूपी वस्त्र का प्रक्षालन करने के लिए क्षारीय साबुन है, तप आत्मा में विद्यमान जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों की महौषधि है, तप शाश्वत सुख का बीज है, तप आत्मा के परिशोधन की एक मात्र विधि है, तप के रासायनिक पदार्थ से ही आत्मा परमात्मा की दशा में परिवर्तित होती है।

तप समस्त इच्छाओं की पूर्ति या इति श्री करने वाला है, तपस्या करने वाले की एक इच्छा अपूर्व नहीं रह सकती है। दुःखों के दरिया से पार होने के लिए इच्छा निरोध लक्षण है, इसलिए ऐसी तप रूपी नौका का आश्रय ग्रहण करो।

(जिज्ञासा-59)
''जीवन में अनित्यादि भावनाओं का चिंतन क्यों?''

समाधानः- मंजिल तक पहुँचने के लिए मार्ग की आवश्यकता है, बिना मार्ग के मंजिल, बिना साधन के साध्य और बिना कारण के कार्य की सिद्धि असंभव होती है, एक समीचीन पगडण्डी मंजिल तक पहुँचाने में समर्थ होती है, आत्मा का कल्याण तत्त्वज्ञान के बिना असम्भव है, तत्त्वज्ञान के बिना वैराग्य नहीं होता, संयम, तप, ध्यान आदि नहीं हो सकते। तत्त्वज्ञान ही आत्मा के समस्त गुणों को प्रकट करने के लिए कुंजी की तरह से है, तत्त्वज्ञान के दिव्य प्रकाश के बिना आत्म महल में अवस्थित गुण रूपी निधि से साक्षात्कार नहीं हो सकता।उस तत्त्वज्ञानरुपी सूर्य को चेतना के विराट गगनांगण में प्रकट करने के लिए ज्ञानावरण व असंयम के श्याम घने मेघों को विगलित करना जरूरी है और वे घनेश्याम घन तत्त्व चिन्तन या अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षा के चिंतन रूपी हवा के बिना विघटित नहीं हो सकते।

अतः आत्मा में कषाय शमन और समता रूपी सुख प्रकट करने के लिए अनित्यादि भावनाओं का नित्य अहर्निश चिंतन करना चाहिए, इनका चिंतन ही वैराग्य का जनक है।

(जिज्ञासा-60)
''परीषहों को समता से जीतना आवश्यक क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी अपने द्वारा उपार्जित पुण्य, पाप कर्मों का फल नियम से भोगता है, इन कर्मों का फल भोगने के लिए प्रत्येक प्राणी मजबूर है, जो कर्म बांधा है, वह उदय में तो आयेगा ही, चाहे उस कर्म की अविपाक निर्जरा हो या सविपाक निर्जरा, कदाचित् उसकी उदीरणा भी की जा सकती है। यूँ तो वर्तमान के पुरुषार्थ के बल पर अपनी अन्य सजाति प्रकृतियों का संक्रमण भी किया जा सकता है।

पाप कर्म के उदय से जीवन में प्रतिकूलतायें आती हैं, इन कष्ट या दुःखों को समता भाव से सहन नहीं किया तो आगे के लिए ऐसे ही कर्मों का बंध पुनः हो जाएगा और पुनः जब ये कर्म उदय में आयेंगे तब भी समता नहीं रखोगे तो फिर उसी प्रकार का पाप कर्म फिर बंध जायेगा। इस प्रकार जीव कभी कर्मों के बंधन से मुक्त नहीं हो पाएगा, इसलिए परिषहों को समता भाव से सहना चाहिए, जिससे नूतन कर्मों का आस्रवबंध न हो, अर्थात् वर्तमान काल में समागत कर्मों का संवर हो तथा भूतकाल में बांधे हुए कर्मों की अविपाक निर्जरा हो सके, किसी विद्वान् ने लिखा भी है-

''सुख-दुःख रेखा कर्म की, काटि सके न कोय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोय।।''

शुभाशुभ कर्म के उदय में समताभाव को तत्त्व ज्ञानी/आत्मज्ञानी ही धारण करने में समर्थ होता है।

(जिज्ञासा-61)
''युद्ध आवश्यक क्यों?''

समाधानः- जब तक व्यक्ति मान-सम्मान, राग-द्वेष, अहंकार-ममकार, अपना-पराया, इष्ट-अनिष्ट, अच्छे-बुरे की कल्पना, धारणा से ऊपर नहीं उठेगा, तब तक उसे युद्ध करने ही पड़ेंगे, कभी युद्ध का कारण जन्मभूमि की रक्षा, कभी स्वाभिमान की रक्षा, कभी मान-मर्यादा की रक्षा, कभी राज्य का विस्तार, कभी सन्तानवृद्धि की चाह, कभी प्रभुत्व की भूख, कभी अधिकारों की सुरक्षा, कभी स्वजन-परिजन की सुरक्षा अथवा धर्म रक्षा का बहाना इत्यादि कारणों से युद्ध हुए थे, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे।

युद्ध का मुख्य कारण है- सहनशीलता का अभाव अथवा वात्सल्य भाव की कमी, परिग्रह के पिशाच का नग्न नृत्य, संकीर्णता के विचारों का उद्रेक, कषायों की तीव्र उत्तेजना पर संयम के नियंत्रण का अभाव।

यदि ये कारण जीवन में न रहें तो युद्ध नहीं होंगे, जैसे भोगभूमि में व स्वर्गों में कभी युद्ध नहीं होते और नरकों में बिना लड़े कोई भी नारकी शांति से नहीं बैठता।

(जिज्ञासा-62)
''किसी को सम्मान किसी को दण्ड क्यों?''

समाधानः- पूर्वकृत कर्म व संस्कारों के कारण किसी व्यक्ति का मन अच्छे कार्य करने में लगता है, तो किसी व्यक्ति का मन बुरे कार्यों में लगता है, एक व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता है, दूसरा अधर्म के मार्ग पर, एक व्यक्ति अपने अधिकार क्षेत्रान्तर्गत वस्तु को भी दूसरे को सौंप देता है, तो दूसरा व्यक्ति दूसरे के अधिकार की वस्तु को भी अपना बनाना चाहता है।

एक व्यक्ति जीवन में न्याय नीति व धर्म के मार्ग पर ही चलता है, तो दूसरा सदैव अन्याय, अनीति, अधर्म व अत्याचार का ही सहारा लेता है, एक के जीवन में स्वकीय पदार्थों के प्रति भी विरक्ति है, तो दूसरे जीवन में दूसरों की वस्तुओं या स्त्री आदि के प्रति तीव्र आसक्ति है, एक तत्त्वज्ञानी है दूसरा नितांत मूर्ख, एक कृतज्ञ है तो दूसरा कृतघ्न, एक उपकारी है तो दूसरा अपकारी।

जब दोनों व्यक्तियों का स्वभाव, व्यवहार, कृत्य, वचन, मनोभाव, गुण, धर्म, संस्कार, प्रवृत्ति और प्रकृति भिन्न-भिन्न हैं, तब दोनों का मिलने वाला फल भी भिन्न ही होगा।

इसलिए अच्छे व्यक्ति की अच्छाइयों का सम्मान किया जाता है तो बुरे व्यक्ति की बुराई को दण्डित किया जाता है, जिससे देश में अराजकता न फैले।

कर्म किसी के साथ अन्याय नहीं करते, प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त होता है।

(जिज्ञासा-63)
''कोई राजा कोई रंक क्यों?''

समाधानः- प्रत्येक संसारी प्राणी कर्मों द्वारा नचाई जाने वाली एक कठपुतली है, संसारी प्राणी स्वतंत्र नहीं, वह कर्मों के पराधीन है, कर्म जैसा नाच नचाते हैं, उसे वैसा ही नाचना पड़ता है, हाँ! यह बात भी सत्य है कि कर्मों का बंध भी वही प्राणी करता है। जीव जैसे कर्म बांधेगा उसका वैसा ही फल उसे भोगना पड़ेगा, कर्मों के आस्रव में तो जीव स्वतंत्र है, किन्तु बाँधे हुए कर्म के फलों में नहीं। जिस जीव ने पूर्व में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शीलव्रत व अपरिग्रह आदि व्रतों का पालन किया है, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति, स्तुति, वंदना, पूजा आदि की है, परोपकार किया है, सत्पात्रों को दान दिया है, पाप नहीं किये, रात्रि भोजन नहीं किया, सप्त व्यसनों का त्याग किया, आठ मूलगुण या श्रमण के अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया था, वह इस भव में राजा हुआ, जो आज सत्कर्म कर रहा है, वह आगे राजा बनेगा, जो पूर्व में राजा बना था, उसने उसके पूर्व सद्कार्य किये थे। जो इसके विपरीत कार्य करता है, वह रंक बनता है।

अतः विवेकी पुरुषों को चाहिए कि वे सदाचारी, संतोषी, सत्पात्र दानी, जिनेन्द्र व सच्चे देव, धर्म के उपासक बने, पापों से, बुराइयों से बचें, संत- महात्माओं की सेवा-भक्ति करें, मानव जाति का उत्थान करें, जीव मात्र की रक्षा करे, सत्य आदि व्रतों का पालन करें, अन्याय, अनीति, अत्याचारों का पूर्ण त्याग करें, जिससे उन्हें रंक नहीं बनना पड़े।

(जिज्ञासा-64)
''कोई विद्वान् कोई मूर्ख क्यों?''

समाधानः- जिस जीव ने पूर्व भव में अपने ज्ञान का सदुपयोग किया, ज्ञानी पुरुषों की सेवा, विनय भक्ति की, सद्शास्त्रों की विनय की, अपने ज्ञान को दूसरे के लिए प्रदान किया, ज्ञान के उपकरणों की विनय की, ज्ञान के फलस्वरूप सदाचार, संयम का पालन किया, ज्ञान, फल, वैराग्य, संयम, व्रत-तप व धर्मध्यान को स्वीकार किया, ऐसा व्यक्ति इस भव में विद्वान् बना।

जिस जीव ने अपने ज्ञान का दुरुपयोग, ज्ञानी पुरुषों का अपमान, शास्त्रों की अविनय, ज्ञान के उपकरणों का नाश, ज्ञानी पुरुषों से ईर्ष्या, गुरु का नाम छिपाना, शास्त्रों का नाम छिपाना, अपना ज्ञान किसी को नहीं देना, ज्ञान में बाधा डालना इत्यादि काम किये, वह इस भव में मूर्ख बना।

प्रत्येक प्राणी अपने पुण्य-पाप के अधीन ही ज्ञानी व मूर्ख बनता है, कोई अन्य व्यक्ति हमें ज्ञानी या मूर्ख नहीं बना सकता। हमारे कर्मों के फलों को भोगने के लिए हम ही मजबूर हैं, दूसरा नहीं, उन कर्मों के कर्ता भी हम ही हैं, अतः हम ही अपने जिम्मेदार हैं दूसरा नहीं।

(जिज्ञासा-65)
''कोई सर्वांग सुन्दर कोई कुरुप क्यों?''

समाधानः- सर्वांग सुन्दरता, सुन्दरता, असुंदरता, कुरूपता, अत्यंत कुरूपता ये सभी पूर्वकृत कर्मों के ही फल हैं। जिस मनुष्य ने, देव ने या पशु ने पूर्वभव में धर्मात्मा, त्यागी व्रती संत-महात्माओं की सेवा-शुश्रुषा की है, उन्हें औषधि देकर उनकी व्याधि का अपहरण किया, उनकी वेदना, कष्ट, दुःख, पीड़ा को दूर किया, उनकी साधना या तपस्या में सहयोगी बने, उनके व्रत नियम, संयम के पालन में सार्थक निमित्त बने, वे सर्वांग सुन्दर अवस्था को प्राप्त हुए, इसके विपरीत जिन्होंने पूर्वभव में दूसरों को सताया, कष्ट दिया, साधना या तपस्या में विघ्न डाला, अपने शरीर में अत्यासक्त रहा, हिंसक, कृत्रिम वस्तुओं से शरीर को सुंदर बनाने का प्रयास किया, साधु-संत, महात्माओं का अनादर किया, शरीर से कुचेष्टायें की, दूसरों को चिढ़ाया, परेशान किया, तो वह प्राणी इस भव में कुरूप हुआ।

सर्वांग सुन्दरता व कुरूपता का कारण भी स्वयं के अच्छे-बुरे कर्म ही हैं, कोई दूसरा इसमें कारण नहीं है।

(जिज्ञासा-66)
''अनंत ज्ञानी बनने की भावना क्यों?''

समाधानः- प्रत्येक पदार्थ में अनेक गुण व धर्म होते हैं, उन गुण व धर्मों का कभी अभाव नहीं होता, जैसे जल का स्वभाव शीतलता है, तो यह शीतलता रूपी धर्म मूलतः जल से नष्ट नहीं हो सकता, जब तक जल-जल के रूप में है, तब तक उसमें शीतलता अवश्य रहेगी ही भले ही उसको गर्म कर लें, उबाल लें तब भी उसमें शीतलता है, क्योंकि वह उबलता पानी भी अग्नि को बुझाने में समर्थ है, यदि शीतलता नहीं होती तो अग्नि बुझ नहीं सकती।

हमारी आत्मा का स्वभाव अनंत ज्ञानी बनना है, अभी वर्तमान में कर्मों के पराधीन होने से अज्ञानी बने हैं, जैसे अग्नि के संयोग से शीतल जल भी गर्म होगा, ऐसे ही ज्ञानावरण कर्म के संयोग से हम अज्ञानी है, पूर्ण ज्ञानी नहीं, किन्तु फिर भी ज्ञान का पूर्ण अभाव नहीं होता, निगोदिया जीव भी ज्ञान चेतना से युक्त है।

हमारे अंदर आपके अन्दर सबके अन्दर ज्ञान है, किन्तु वह है अपूर्ण ही, पूर्ण ज्ञानी बन जाना हमारा स्वभाव है, इसलिए अनंत ज्ञानी बनने की हमारी भावना रहती है।

(जिज्ञासा-67)
''अनंतशक्ति की भावना क्यों?''

समाधानः- अंतराय कर्म के पूर्ण क्षय हो जाने पर आत्मा में अनन्त शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इसके पूर्व अंतराय कर्म के क्षयोपशम से यथायोग्य शक्ति होती है, प्रत्येक भव्य प्राणी का स्वभाव अंतराय कर्म का क्षय करके अनंत-शक्ति प्राप्त कर लेना है।

इसलिए प्रत्येक भव्य प्राणी चाहता है कि मैं अनंत शक्तिशाली बनूँ, संसार का कोई भी जीव हीन शक्ति वाला, दुर्बल, कमजोर बनना नहीं चाहता, तुम भी अंतराय रूपी कर्मों को नाश कर अनंत शक्तिशाली बनने को सदैव प्रयत्नशील रहो।

(जिज्ञासा-68)
''अनन्त सुख पाने की भावना क्यों?''

समाधानः- मोह के कारण जीव अपने स्वभाव को भूलकर पर स्वभाव को ही अपना मान बैठा है, मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित करने वाला है, यह जीव को पर-पदार्थों में लीन कर देता है और अपनी आत्मा में नहीं आने देता।

दर्शन मोहनीय, मिथ्यात्व तो जीव के महाशत्रु हैं, वे तो अपने स्वरूप का श्रद्धान ही नहीं करने देते, जब यह आत्मा पुरुषार्थ करके मोहनीय कर्म का उपशम या क्षयोपशम करता है, तब आत्मा में किंचित सुख उत्पन्न होता है, जब सम्पूर्ण मोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है, तब यह आत्मा अनंतसुखी बन जाता है।

कर्मों को नष्ट कर अनंतसुखादि गुणों को प्राप्त कर लेना प्रत्येक जीव का स्वभाव है, नियति है, अंतिम परणति है, इसलिए प्रत्येक भव्य जीव अनंतसुख पाने की भावना करता है और उत्पन्न भव्य जीवों की वह भावना नियम से पूर्ण भी होती है।

(जिज्ञासा-69)
''मैं सबको देख लूँ, कोई मुझे न देख सके ऐसी भावना क्यों?''

समाधानः- दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से प्राणी चक्षुदर्शन, अचक्षु दर्शन व अवधि दर्शन को प्राप्त करता है, दर्शन पूर्वक ही छद्मस्थों को ज्ञान होता है, केवली भगवान् के ज्ञान और दर्शन की युगपत प्रवृत्ति होती है, अनंतदर्शन की उत्पत्ति दर्शनावरणी कर्म के सम्पूर्ण नाश होने पर ही होती है।

जब भव्य जीव अपने सम्यक् पुरुषार्थ से कर्मों का क्षय कर देता है, तब वह सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, अनंतसुख व अनंतशक्ति आदि गुणों को प्राप्त कर लेता है।

मेरा स्वभाव या स्वरूप अमूर्तिकपना है, अविकारी, निर्मल है, शाश्वत सुख रूप है, इसलिए आपकी भावना अपने स्वभाव को प्रकट करने की होती है, स्वभाव को प्राप्त जीव लोक व अलोक में विद्यमान समस्त द्रव्य, गुण व उनकी अनंत पर्यायों को देख लेते हैं, किन्तु उन्हें कोई भी चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता, वे सिद्ध परमेष्ठी तो केवल दर्शन व केवलज्ञान ही गम्य हैं।

मैं सबको देख लूँ, मुझे कोई न देख सके, ऐसी भावना स्वभाव की ओर गमनशील भव्य के ही हो सकती है।

(जिज्ञासा-70)
''मैं ऊँचेआसन पर बैठूँ ,ऐसी भावना क्यों?''

समाधानः- स्वकीय शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुए अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठी लोक के अग्रभाग स्वरूप सिद्धालय में विराजमान हैं, जितने भी जीव कर्मों के बंधन से मुक्त अवस्था को प्राप्त करते हैं, वे सभी ऊर्ध्व गमन करके वहाँ तक पहुँच जाते हैं, जहाँ तक धर्मद्रव्य है, लोक के बाहर धर्म द्रव्य नहीं है, इसलिए उसके ऊपर नहीं जा सकते।

सभी कर्म के बंधन रहित जीव/शुद्धात्मा एक बराबर सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गये, इसलिए संसारी प्राणियों में भी अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने की भावना बनती है, कि मैं भी सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करूँ।

(जिज्ञासा-71)
''कर्मों का संवर क्यों?''

समाधानः- प्रत्येक संसारी जीव जो मन, वचन, काय से सहित है, निरंतर कर्मों का आस्रव करता है, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये कर्मास्रव के कारण हैं, इनसे रहित जीव कर्मास्रव नहीं करता, प्रथम गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक ये प्रत्यय यथा सम्भव पाये जाते हैं, चौदहवें गुणस्थान में इनमें से कोई भी प्रत्यय नहीं है, इसलिए वहाँ आस्रव भी नहीं है, जो आस्रव कषाय से रहित अवस्था में होता है वह जीवन का घात करने में असमर्थ होता है, क्योंकि कषाय के बिना उसकी स्थिति व अनुभाग नहीं पड़ते, वह जैसे ही आते हैं वैसे ही चले जाते हैं। जैसे- ''सूने घर को पाहुनों, ज्यों आवे त्यों जाय।।''

कषाय सहित अवस्था का आस्रव नियम से संसार में भ्रमण कराता है, इसलिए इसे रोकने के लिए प्रत्ययों का परिहार आवश्यक है। मिथ्यात्व का त्याग सम्यक्त्व से होता है अविरति का विरति भाव से, प्रमाद का अप्रमत्तता से, कषाय का अकषाय भाव से त्याग होता है।

आस्रव व बंध ही संसार है, इससे बचने का उपाय है संवर और पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा आवश्यक है, ये संवर और निर्जरा मोक्ष में कारण है।

अतः प्रत्येक प्राणी/जो प्राणी मोक्ष चाहते हैं, उन्हें संवर और निर्जरा की परमावश्यकता है, बिना संवर के निर्जरा भी व्यर्थ होती है।

(जिज्ञासा-72)
''कर्मों की अविपाक निर्जरा क्यों?''

समाधानः- निर्जरा का अर्थ है पूर्वबद्ध कर्मों का एक देश निर्जीण हो जाना, वह निर्जरा दो प्रकार की होती है एक सविपाक निर्जरा दूसरी अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा का अर्थ है- कर्मों के अपने समयानुसार फल देकर पूर्व फल भोगकर या बिना फल भोगे तपस्या आदि के द्वारा नष्ट कर देना। सविपाक निर्जरा प्रत्येक संसारी प्राणी के प्रतिसमय चल रही है, किन्तु वह निर्जरा मोक्षमार्ग में सहकारी नहीं है, क्योंकि उस निर्जरा के साथ कर्मों का उतना ही या उससे ज्यादा कर्म बंध भी निरंतर हो रहा है, अतः कर्मों को अपने उदयकाल के पूर्व उदय में लाकर नष्ट कर देना मोक्ष में सार्थक है, किन्तु वह अविपाक निर्जरा व्रती, महाव्रती, महात्माओं के ही होती है तथा यह अविपाक निर्जरा संवर के साथ होती है, तभी सार्थक होती है।

सर्व कर्मों का शीघ्र क्षयकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए अविपाक निर्जरा परमावश्यक है, बिना निर्जरा के कभी किसी का मोक्ष न हुआ था, न हो सकता है, न हो सकेगा।

अतः मोक्षाभिलाषियों के अविपाक निर्जरा का आश्रय परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-73)
''पापाचरण का त्याग क्यों?''

समाधानः- संसार का प्रत्येक प्राणी क्रिया करता है, उसकी प्रवृत्ति ही उसका आचरण है, आचरण दो प्रकार के होते हैं, एक सदाचरण दूसरा असदाचरण (सदाचरण सद्मार्ग की ओर ले जाता है, असदाचरण असद् मार्ग की ओर ले जाता है) सदाचरण का संयमाचरण व संयमासंयमाचरण ,यथाख्यात आचरण आदि कई भेद हैं, जबकि असदाचरण के दो भेद हैं, पूर्ण असदाचरण, दूसरा एकदेश असदाचरण, यह मिथ्यादृष्टि का सदाचरण या संयमाचरण भी हो सकता है, क्योंकि वह सत् से अनभिज्ञ है।

पूर्ण असदाचरण ही पापाचरण है, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूप प्रवृत्ति ही पापाचरण है, पापाचरण नियम से हर काल में हर क्षेत्र में, हर प्राणी के लिए दुःख के ही कारण होते हैं।

अतः सुखाभिलाषी महानुभावों को दुःख के कारण स्वरूप पापाचरण का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।

(जिज्ञासा-74)
''जीवन में सदाचरण क्यों?''

समाधानः- जैसा कि अभी आपको बताया कि आचरण के दो भेद हैं, सदाचरण और असदाचरण। योगों से युक्त जीव जो भी प्रवृत्ति करेगा, वही उसका आचरण है असत् प्रवृत्ति- असत् की ओर और सत् रूप प्रवृत्ति या आचरण सद् की ओर ले जाती है।

जो सुखाभिलाषी महानुभाव हैं उन्हें सदाचरण ही करना पड़ेगा, क्योंकि सदाचरण के बिना सद्मार्ग व सम्यक् लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। जीवन में सुख- शांति, शुद्ध स्वरूप व शिवत्व की प्राप्ति हेतु सदाचरण अनिवार्य है।

(जिज्ञासा-75)
''धर्म प्रभावना क्यों?''

समाधानः- सम्यक्दर्शन के आठ अंग हैं, १. निशंकित, २. निकांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४. अमूढ़दृष्टि, ५. उपगूहन, ६. स्थितिकरण, ७. वात्सल्य, ८. प्रभावना।

ये प्रभावना सबसे अंतिम व सर्वोपरि अंग है, प्रभावना शरीर के सिर की तरह प्रधानभूत है, सिर के बिना मनुष्य का जीवन असंभव हो जाता है, उसी प्रकार प्रभावना के बिना सम्यक्दृष्टि का सम्यक्दर्शन नहीं ठहर सकता।

धर्म प्रभावना के माध्यम से भव्यों का मन निर्मल बन जाता है, मन पंचपरमेष्ठी की भक्ति में लगता है, संसारी भव्य जीवों के प्रति वात्सल्य भाव जाग्रत होता है, सातिशय पुण्य का आस्रव होता है, पाप कर्मों की निर्जरा होती है।

बिना प्रभावना के सम्यक्दर्शन भी स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए धर्म प्रभावना करना धर्मात्मा के लिए परमावश्यक है।

(जिज्ञासा-76)
''स्वनिंदा व पर प्रशंसा क्यों?''

समाधानः- संसारी प्राणी प्रायःकर अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है और दूसरे की निंदा में भी उसे रस आता है, किन्तु अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करने से नीच गोत्र, अयश कीर्ति, असाता वेदनीय आदि पाप कर्मों का बंध होता है, उस पाप कर्म के उदय से नियम से दुःख की प्राप्ति होती है, संसार का कोई प्राणी दुःख नहीं चाहता, सभी सुख चाहते हैं, इसलिए दुःखों से बचने के लिए और सुख प्राप्त करने के लिए प्राणी मात्र को अच्छे कार्य करना चाहिए।

स्वनिंदा करने से अपने दोषों का क्रमशः परिहार होता है और दूसरों की प्रशंसा करने से गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। स्वनिंदा व परप्रशंसा करने से उच्च गोत्र, सातावेदनीय, शुभ नाम कर्म व शुभ आयु आदि पुण्य प्रकृतियों का बंध होता है।

ये पुण्य प्रकृतियाँ नियम से मोक्षमार्ग में सहकारी हैं, बिना पुण्य प्रकृतियों के उदय के कोई भी प्राणी मोक्षमार्गी नहीं बन सकता। पाप प्रकृतियाँ संसार में बांधकर रखने वाली हैं, अतः उनका त्याग परमावश्यक है तथा पुण्य प्रकृतियाँ आत्म कल्याण में कारण हैं, अतः उनका बंध भी आवश्यक है।

(जिज्ञासा-77)
''प्यास लगने पर होठ व कण्ठ शुष्क क्यों?''

समाधानः- उदर में अन्नादिक के पहुँचने पर उसके पाचन के लिए जल की आवश्यकता भी होती है, यदि जल की मात्रा कम होगी तो उच्छ्वास के माध्यम से आहार नली शुष्क हो जायेगी, और ओष्ठ भी शुष्क होने लगेंगे, कण्ठ तालु व जिह्वा भी शुष्क हो जायेगी, यह दशा विशेषकर पित्त प्रकृति वालों के साथ या रक्त में शुगर की मात्रा अधिक होने पर या भोजन में मीठा अधिक ले लेने पर या तले पदार्थ ले लेने पर ही बनती है, कफ प्रकृति वाले या वात प्रकृति वालों के साथ यह दशा नहीं बनती है। जैसे किसी मशीन में पानी की आवश्यकता है और उसमें पानी न डाला जाये तो वह चलते-चलते गर्म हो जाती हैं, इसी तरह हमारे उदर में भी जठराग्नि है, जो भोजन को पचाने का काम करती है। यदि पानी नहीं होगा तो जठर की अग्नि अपनी ऊष्ण वाष्प से श्वास नली, कण्ठ, तालु, जिह्वा, होंठ सभी को सुखा देगी।

(जिज्ञासा-78)
''पेट में कब्ज क्यों?''

समाधानः- किसी भी प्राणी को जीवित रहने के लिए, प्राणवायु, जल, भोजन आदि अनिवार्य है।प्राणवायु ,जल और भोजन के बिना जीवन असंभव हो जाता है किन्तु जब कोई प्राणी भूख न लगने पर भी भोजन ग्रहण करता रहे और जठराग्नि मंद हो गई हो तो भोजन आमाशय में कच्चा ही रखा रहता है, वह कच्चा भोजन पेट दर्द, गैस, अम्लपित्त की वृद्धि इत्यादि रोगों को पैदा करता है, भोजन पूर्णरूप से न पच पाना, भोजन का पेट में अपक्व रूप से पड़ा रहना ही कब्ज है।जो व्यक्ति उतना ही भोजन करते हैं, जितना आवश्यक है तो पेट में कब्ज नहीं होता, आयुर्वेदाचार्य कहते हैंः-

यदि भोजन की इच्छा कम हो रही है, मैं भोजन करूँ या ना करूँ, ऐसी इच्छा है तो भोजन नही करना चाहिए और शौच की कम इच्छा हो रही है, मैं शौच के लिए जाऊँ या न जाऊँ तो अवश्य जाना चाहिए, जिससे मल न रहे, क्योंकि जिस प्रकार धन संचय दोषों का कारण होता है वैसे ही मल संचय रोग का कारण होता है, इसलिए मलोत्सर्ग के सम्बन्ध में प्रमादी नहीं होना चाहिए, विकारों का शमन नहीं - निर्गमन ही अच्छा है।

(जिज्ञासा-79)
"क्रोध में नेत्र व चेहरा लाल क्यों?"

समाधानः- क्रोध शरीर की अस्वाभाविक क्रिया है,क्षण भर के क्रोध से १५०००श्वेत रुधिर कणिकायें- रक्त रुधिर कणिकाओं में परिवर्तित हो-जाती हैं,इसलिए रक्त में लालिमा बढ़ जाती है,क्रोध के कारण व्यक्ति मस्तिष्क पर नियंत्रण करने में असमर्थ हो जाता है इसलिए मस्तिष्क ही सबसे पहले गर्म होता है,मस्तिष्क के गर्म होने से पूरा चेहरा ही लाल हो जाता है,आँखो के माध्यम से प्रायःकर क्रोध का प्रकटीकरण होता है,अतः नेत्रों में लालिमा आ जाती है।

क्रोध भी एक अग्नि है,अग्नि की समीपता रक्त को पतला करती है,जिससे वह पतली सी चमड़ी के बाहर दृष्टिगोचर हो जाता है।सर्दी की अपेक्षा गर्मी में,छाया की अपेक्षा धूप में ,रात्रि की अपेक्षा दिन में चेहरा क्रोध से जल्दी लाल हो जाता है।शांति में श्वेत रुधिर कणिकाऐं वृद्धिंगत होती हैं,जिससे आँखों में - धवलता ही दृष्टिगोचर होती है।

(जिज्ञासा-80)

कषायों की शांति होने पर आनंदानुभूति क्यों ?

समाधान– जिस प्रकार तालाब में निर्मल जल पर सघन शैवाल छाये हों, बर्तनों में गंदगी जम गई हो, आभूषण मलिन हो गये हों, वस्त्र गंदे हों, दहकते कोयलों पर राख जम गई हो, तो उन पदार्थों का स्वरूप, विद्रूप मलिन ही दिखता है या दिखता ही नहीं है, किन्तु तालाब की शैवाल हट जाने पर, सघन श्याम घनों के विगलित हो जाने पर, बर्तनों, आभूषणों, वस्त्रों, रत्नों, फर्श को साफ करने पर कोयलों की राख हटते ही पुनः वह दहकते हुए सुन्दर प्रतिभासित होते हैं, उसी प्रकार आत्मा पर अनादिकाल से कषायों की परतें जमी हुई हैं, सद्दृष्टि व ज्ञान के दीपक से उन्हें देखकर, पहचान कर, वैराग्य व द्वादशानुप्रेक्षाओं के द्वारा या संयम-साधना के द्वारा वे कषायें धीरे-धीरे हटने लगती हैं, उनका उपद्रव जब शांत होने लगता है, तब जीव अपने स्वभाव का अनुभव करने लगता है, प्रत्येक जीव का मूल/शुद्ध स्वभाव आनंदानुभूति है।इसलिए कषायों के शांत हो जाने पर आनंदानुभूति होती है।

(जिज्ञासा-81)

''नरकों में इतना भयंकर दुःख क्यों?''

समाधान– जिन मनुष्यों व तिर्यंचों ने अपनी मानव पर्याय को या पशु पर्याय को भोगते समय तीव्र हिंसा की हो, असत्य बोलकर दूसरों का धन हरण किया, कष्ट दिया, धोखा दिया, चोरी की, परस्त्री के साथ विषयों का सेवन किया, शिकार किया, जुआ खेला या मद्य, माँस, मधु का सेवन किया या रात्रि में भोजन किया और भी कोई जघन्यतम पाप किये उनका फल भोगने के लिए प्रकृति प्रदत्त दण्ड भोगने के लिए उस जीव को नरक में जाना होता है, जहाँ पर भयंकर वेदना, यातना, दुःख व संताप दिया जाता है।

जिस प्रकार लोक में देखा जाता है कि बुरा काम या पाप का काम या प्राणी के अहित का काम करने वाले को जेल में डाला जाता है और भी यातनायें दी जाती हैं, शासन द्वारा दण्डित किया जाता है, अच्छे कार्य करने वालों को सम्मानित किया जाता है, अच्छे निवास रहने को दिये जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृति द्वारा अच्छे कार्य करने वाले व्यक्ति-स्वर्गादि में सुख भोगते हैं। जिस जीव ने जितना भयंकर पाप किया है, उसे उतना भयंकर दुःख भोगना पड़ता है, क्योंकि प्रकृति कभी भी, कहीं भी, किसी के भी साथ कदापि अन्याय नहीं करती।

(जिज्ञासा-82)
''प्राणियों के परिणामों में कभी विशुद्धि कभी संक्लेशता (अशुद्धि) क्यों?''

समाधानः- दीपक की लौ हवा के झोंके से कभी मंद कभी मंदतर कभी मंदतम होती है, तो कभी प्रखर, प्रखरतर व प्रखरतम हो जाती है, नदी में लहर कभी बहुत ऊँची और ऊँची होती जाती है, तो कभी वह लहर धीरे-धीरे लुप्त होती दिखाई देती है।

उसी प्रकार कषायों की मंदता से परिणामों में विशुद्धि और कषायों के तीव्र उदय से परिणामों में संक्लेशता बन जाती है, संसार में किसी भी जीव के परिणाम कूटस्थ नहीं होते, वे सदैव हवा की तरह अस्थिर व परिवर्तित होते रहते हैं, कभी सद्निमित्तों से विशुद्ध परिणाम हो जाते हैं, तो कभी अशुभ निमित्तों से संक्लेशित! अर्थात् परिणामों की विशुद्धि व संक्लेशता का मुख्य कारण कषायों का मंद व तीव्र उदय होता है।

समझदार विवेकी पुरुषों को चाहिए कि वे संक्लेशता के उत्पादक परिणामों के निमित्तों से बचें, विशुद्ध परिणामों के जनक ऐसे शुभ निमित्तों के बीच अधिक से अधिक रहने का पुरुषार्थ करें।

(जिज्ञासा-83)
''स्वर्गादि में अकाल मरण असम्भव क्यों?''

समाधानः- उपपाद शय्या से जन्म लेने वाले सभी देव (भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी एवं वैमानिक) सभी नारकी, सभी भोग भूमिज मनुष्य-तिर्यंच एवं उत्तम पदवीधारी चरमशरीरी महापुरुष ये अपनी आयु का पूर्णतः भोग करते हैं, इनकी आयु का बीच में उच्छेद नहीं होता, ऐसा शाश्वत सिद्धान्त है।

इस नियम का उल्लंघन कभी भी किसी भी क्षेत्र में व किसी भी काल में नहीं हो सकता, इसलिए स्वर्गादि में अकाल मरण असम्भव है। जिस प्रकार बर्फ को गर्म करना असम्भव है, जल को अग्नि बनाना असम्भव है, वायु को कूटस्थ/ठोस द्रव्य नहीं बनाया जा सकता, चेतन को अचेतन और अचेतन को चेतन बना पाना असम्भव है, उसी प्रकार स्वर्गादि के देवों का भी अकाल मरण असम्भव है।

(जिज्ञासा-84)
''कर्म भूमि या जीवों में अकाल मरण क्यों?''

समाधानः- कर्मभूमि में जन्म लेने वाले सामान्य और तिर्यंचों की आयु बीच में (पूर्ण भोगे बिना भी) खण्डित हो सकती है, कर्मभूमि के सभी मनुष्यों का, तिर्यंचों का सदा ही अकाल मरण होता है- ऐसा नहीं है, हाँ, अकाल मरण सबका हो सकता है, किन्तु मृत्यु के बाह्य साधनों के मिलने पर ही अकाल मरण सम्भव है।

जैसे कि अग्नि में जलकर असमय में मर जाना, पानी में डूबकर मर जाना, विष भक्षण कर मृत्यु को प्राप्त हो जाना या श्वासों का निरोध कर प्राण विसर्जन कर देना या फाँसी की सजा या सूली की सजा देकर उसके प्राणों का हरण कर लेना, असाध्य रोग से प्राणों का वियोग हो जाना, ये सब आज कर्मभूमि के मनुष्य व तिर्यंचों में सम्भव है, अतः कर्मभूमि में अकाल-मरण भी संभव है, यह आगम है, प्रत्यक्ष व प्रमाण दोनों से सिद्ध है।

(जिज्ञासा-85)
''सर्वार्थ सिद्धि आदि विमानों में उत्कृष्ट भव सुख क्यों?''

समाधानः- सर्वार्थ सिद्धि आदि सर्वोत्कृष्ट विमानों में उत्पन्न होने वाले सभी अहमिन्द्र उत्कृष्ट जाति का भव सुख इसलिए प्राप्त करते हैं, क्योंकि उन्होंने पूर्वभव में सर्वोत्कृष्ट संयम साधना की, उत्कृष्ट तपस्या की, आत्मध्यान लगाया।

परम वैरागी, परम आध्यात्मिक योगी बनकर, जंगलों में रहकर मोक्ष प्राप्ति के लिए तपस्या या साधना में रत रहें, किन्तु वे अपने कर्मों को पूर्णतया क्षय नहीं कर पाये, कुछ कर्मों को ही क्षय कर पाये या क्षय किया, अतः उन्हें सर्वार्थ सिद्धि में जाना पड़ा और वे असफल विद्यार्थी की तरह से हैं, जो अगली कक्षा में नहीं जा सके, किन्तु पिछली कक्षा में सर्वोत्कृष्ट विद्यावान् विद्यार्थी हैं।

सर्वार्थ सिद्धि में जन्म लेने वाले अहमिन्द्र भी उपशम श्रेणी से च्युत हो देवायु बांधकर वहाँ उत्पन्न हैं, उनके चित्त में शेष रहा किंचित् राग ही उनके भव-भ्रमण का कारण बन गया। मोक्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण योगी ही (जो मात्र १ अंक से अनुत्तीर्ण हुए) ऐसे विद्यार्थी भी सर्वार्थ सिद्धि में जाते हैं।

(जिज्ञासा-86)
''गंधोदक या पादपीठ की भी वंदना क्यों?''

समाधानः- प्रायः संसार के सभी दर्शन, मत, मान्यता व अवधारणाओं को मानने वाले महानुभाव इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्राणी पर निमित्तों का प्रभाव पड़ता है, संसार के पदार्थ भी प्राणियों के परिणामों से प्रभावित होते हैं, जैसे कि पुष्प की टोकरी पर ढका हुआ कपड़ा भी सुगंधित हो गया, हाथ में ग्रहण किया चंदन का चूरा, हाथ से अलग करने पर भी अपनी सुगन्ध छोड़ गया, कोयले को हाथ लगाते ही हाथ काला हो गया, हाथ में चूना को लेते ही हाथ सफेद हो गया,शक्कर का संग पाते ही दुग्ध व जलादि मिष्ठ हो गया, घृत हाथ में आते ही हाथ चिकना हो गया, बर्फ को छूते ही हाथ ठण्डा हो गया, अग्नि को छूते ही हाथ में फोला/फलक आ गया (जल गया/जले का निशान आ गया)।

परम तपस्वी योगी के जंगल में तपस्या करने से पूरा वातावरण शांत हो जाता है, उसी प्रकार भगवान के या पूज्य पुरुष, गुरु के व संत महात्मा आदि जो अत्यंत विशुद्ध परिणामों से सहित हैं, उनके समीप पहुँचते ही अपने परिणामों में निर्मलता व परिणाम शांत हो जाते हैं, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी शांति का अनुभव करते हैं।

महापुरुष जिस स्थान पर विराजते हैं- वह स्थान भी पूज्य हो जाता है, उनके शरीर से स्पर्शित जल भी उनकी विशुद्ध वर्गणाओं से युक्त होने के कारण पूज्य हो जाता है, इसलिए विवेकशील सज्जन पुरुषों द्वारा पाद पीठ व गंधोदक की वंदना की जाती है, जिससे उन पूज्य पुरुषों के गुण हमें भी प्राप्त हो सकें।

(जिज्ञासा-87)
''घृत दीपक से ही आरती क्यों?''

समाधानः- संसार में कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो नकारात्मक ऊर्जा को उत्पन्न करते हैं, सकारात्मक ऊर्जा को नष्ट या प्रभावहीन बनाते हैं, जैसे सड़े-गले पदार्थ, टूटी-फूटी वस्तुऐं, फटे-पुराने कपड़े, अनुपयोगी उपकरण, जिन्हें देखकर दुःख, खेद, क्षोभ, चिंता, संक्लेशता पैदा हो ऐसी वस्तुऐं। दूसरी ओर संसार में कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो निरंतर सकारात्मक ऊर्जा को ही उत्पन्न करते हैं, नकारात्मक ऊर्जा को पूर्णतया नष्ट कर देते हैं, अथवा उसे प्रभावहीन बना देते हैं, जिन पदार्थों को देखकर चित्त में आनन्द, उल्लास, उत्साह प्रकट हो, परिणाम विशुद्ध हों, जो पदार्थ तीव्र इच्छा या तीव्र पुरुषार्थ करके प्राप्त किये हैं, चित्त को प्रफुल्लित करने वाले पदार्थ व वचन सकारात्मक ऊर्जा के ही जनक होते हैं।

घृत दीपक से आरती करने पर चित्त आनंदित होता है, रोग-निरोधक क्षमता बढ़ती है, नेत्र ज्योति वृद्धिंगत होती है, परिणाम निर्मल होते हैं, पापों का क्षय होता है। सातिशय पुण्य की संप्राप्ति होती है, सकारात्मक ऊर्जा निष्पन्न होती है, दूषित वर्गणाऐं नष्ट होती हैं।

एक चम्मच शुद्ध देशी घी (गाय के दूध से निकाला गया) के जलने से दस टन ऑक्सीजन उत्पन्न होती है, जो प्राणीमात्र को निरोगी बनाने में कारण है, इसलिए घृत का दीपक जलाकर ही आरती करना चाहिए, किसी ने कहा भी है '' एक टन घी खाने से एक चम्मच घी जलाना, आरती करना ज्यादा लाभप्रद है, पुण्य का कारण है।''

(जिज्ञासा-88)
''साधना हेतु भोग प्रधान नगरियों का त्याग क्यों?''

समाधानः- साधना का अर्थ है, सहना, जीवन की अनुकूलता व प्रतिकूलता में समभाव रखना, मन रूपी तुला दण्ड को कभी भी, किसी भी ओर नहीं झुकने देना, राग-द्वेष से मन को रहित कर लेना, इन्द्रियों को जीत लेना, कषायों का शमन करना, पाँचों प्रकार के पापों को जीवन चर्या में से निकालकर बाहर कर देना, जिस प्रकार एक गृहिणी चावल शोधन करते समय उसमें से कंकड़, पत्थर आदि अलग करती है, वैसे ही जीवन के धान्य में पाप रूपी कंकड़-पत्थर निकालकर, खीर बनाने हेतु दूध, शक्कर, मेवा का प्रयोग किया जाता है तथा सबको मिलाकर अग्नि से तपाना पड़ता है।

उसी प्रकार आत्मा में व्यवहार रत्नत्रय का दूध, निश्चय रत्नत्रय की मिठाई, आत्मध्यान की मेवा एवं तप की अग्नि प्रज्ज्वलित करनी होती है। जिस प्रकार का वातावरण होता है, परिणाम उसी प्रकार के सहजता में बन जाते हैं, भोग प्रधान नगरियों में भोग-वासना के परिणाम सहज बन जाते हैं, योग साधना के नहीं, इसलिए साधकों को योग-साधना करने के लिए भोग प्रधान नगरियों का त्याग ही करना चाहिए।

(जिज्ञासा-89)
''दूसरों की शिकायत करने वाला सदैव दुःखी क्यों?''

समाधानः- जो व्यक्ति अपने आप में मस्त है, लीन है, अपने कार्य में संलग्न है, दूसरे की ओर कोई ध्यान ही नहीं है, वह व्यक्ति दूसरे के प्रति राग-द्वेष से भी रहित हो सकता है, जो दूसरे की ओर देखता है, वह नियम से रागी, द्वेषी बनेगा क्योंकि किसी को अच्छा या बुरा कहेगा, उसे कोई अच्छा दिखेगा, कोई बुरा, यही तो राग-द्वेष है।

दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति दूसरों से परेशान है, तो इसका आशय यह है कि उसने सभी गलतियाँ दूसरों पर आरोपित कर दीं, स्वयं की गलती के लिए स्वयं को जिम्मेदार नहीं मान रहा है। जो स्वयं की गलती खोजने में असमर्थ है, अपने आप से असंतुष्ट है, वही दूसरों से गिला-शिकवा करता है, खुद से संतुष्ट व्यक्ति दूसरे से गिला-शिकवा नहीं करता, अपने किसी भी कृत्य या उसके फल का जिम्मेदार वह खुद को ही स्वीकार करता है। जिसके जीवन में जितने अधिक गिले-शिकवे होते हैं वह उतना ही ज्यादा दुःखी होता चला जाता है, वह अपने आप से च्युत हो जाता है, अपने स्वभाव को विस्मृत कर परभावों में डूब जाता है, परभावों में डूबा हुआ समझो संसार में ही डूब रहा है, अपने आप से ऊब चुका है, टूट चुका है, दूर हो चुका है, अतः सभी गिले-शिकवे छोड़कर अपने आपको देखो, यही आत्महित का शाश्वत मार्ग है।

(जिज्ञासा-90)
''समाज को साधुओं की और साधुओं को समाज की आवश्यकता क्यों?''

समाधानः- जिस प्रकार चन्द्रमा की शोभा रात्रि से है, रात्रि की शोभा चन्द्रमा से है, तालाब की शोभा कमलों से है, कमलों की शोभा तालाब से है, पुष्प का सौंदर्य पराग से है, पराग का सौन्दर्य पुष्प से है, तारे चन्द्रमा से सुशोभित होते हैं, चन्द्रमा तारों से सुशोभित होता है, अहिंसा की शोभा सत्य से है, सत्य की शोभा अहिंसा से है, उसी प्रकार समाज की शोभा साधुओं से है और साधुओं की साधना व प्रभावना समाज से है, समाज के बिना साधु अपनी साधना नहीं कर सकते और साधुओं के बिना समाज सही दिशा में नहीं चल सकती।

यूँ कहें कि साधु और समाज धर्मरूपी रथ के दो पहिये हैं, दोनों के स्थान एक-दूसरे से विपरीत हैं, फिर भी एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता है, एक के बिना दूसरे का धर्म नहीं पल सकता। जल को समुद्र तक पहुँचाने के लिए नदी का रूप लेना ही पड़ता है और नदी दो किनारों के बिना बह नहीं सकती। इसी तरह धर्म का प्रवर्तन श्रावक और साधु दोनों पक्षों के बिना या किसी भी एक पक्ष के बिना असम्भव है।

श्री सत्यार्थी मीडीया पेश करते हैं महाविशेषांक

समझाया रवीन्दु न माना

गुरुदेव से सम्बंधित छायाचित्र, संस्मरण, भजन, कविता या साधना की विशेषता प्रदर्शित करता हुआ आलेख अवश्य प्रेषित करें ।

पूज्य श्री के विराट व्यक्ति व (गागर में सागर) को भरने का दु:साहस

समझाया रवीन्दु न माना

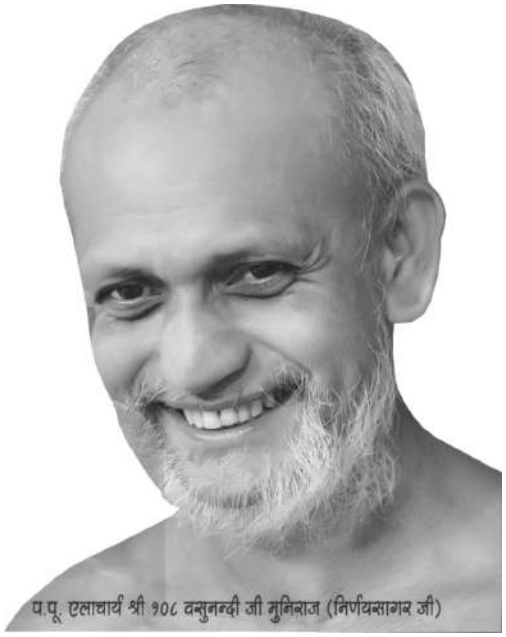

प.पू. एलाचार्य श्री १०८ वसुनन्दी जी मुनिराज (निर्णयसागर जी)